श्रवणकुमार



Art, Bombay, 8

संयुक्त प्रान्त के शिक्षा विभाग द्वारा, वर्नाक्यूलर तथा ऐङ्गलोवर्नाक्यूलर
स्कूलों में इनाम देने एवम् लाइब्रेरियों में रखे जाने के लिए स्वीकृत

श्रवणकुमार

"श्री सूरविजय-नाटक-समाज" का

प्रधान-

शिक्षाप्रद एवं चित्ताकर्षक

नाटक

लेखक-

कीर्त्तनकलानिधि, काव्यकलाभूषण-

प० राधेश्याम कविरत्न

प्रकाशक-

प० राधेश्याम कविरत्न

अध्यक्ष—श्रीराधेश्याम पुस्तकालय

बरेली.

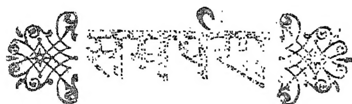
पाँचवीं बार ४००० } सन् १९२६ { मूल्य बारह आने

मुद्रक-प० रामनारायण पाठक, श्रीराधेश्याम प्रेस बरेली.

सूचना ।

श्री राधेश्याम पुस्तकालय, बरेली
ने उनकी आज्ञा से इस
नाटक को प्रकाशित
किया है ।





श्रीमन्महाराजाधिराज श्री १०८ कैप्टिन

हिज़ हाईनेस नरेन्द्रशाह बहादुर,

टेहरी नरेश.

राजन्,

श्रीमान् उन उदारचेता नरेशों में हैं जिन्हों ने सर्वगुण-आगरी नागरी लिपि और हिन्दी भाषा को अपनाया है। और उन धर्मनिष्ठ नृपालों में हैं जिन्होंने सनातनधर्म के सिद्धान्तों को अङ्गीकार करके अपने लौकिक-जीवन को सार्थक बनाने के साथ साथ पारलौकिक अभ्युदय तथा निःश्रेयस-सिद्धि का मार्ग प्रशस्त किया है। इस हिन्दी भाषा के नाटक का नायक एक आदर्श धर्मजीवी व्यक्ति है। सनातनधर्म की आदर्श शिक्षा-पद्धति का अनुगमन करते हुये उसने माता पिता की यत्परनास्ति सेवा करके पुत्रधर्म की पराकाष्ठा दिखाई है। अतएव हिन्दी-भाषा क नाते से और सनातनधर्म के नाते से यह ग्रन्थ श्रीमान् के करकमलों में सादर और सानुराग समर्पित है।

मन्त्रार्थाः सफलाः सन्तु पूर्णाः सन्तु मनोरथाः ।
शत्रूणाँ बुद्धिनाशोऽस्तु मित्राणामुदयस्तव ॥

ग्रन्थकार

मेरा संक्षिप्त निवेदन

आज तीन या चार वर्ष हुए, दिल्ली में मैं कथा बाँच रहा था। उन्हीं दिनों "श्रीसूरविजय—नाटक—समाज" के मालिक श्रीयुत लवजी त्रिवेदी व दुर्लभरामजी रावल मुझसे मिलने आये। लवजी सेठ के सच्चे प्रेम-भाव ने और दुर्लभराम रावल के सच्चे आग्रह ने मुझे मजबूर कर दिया कि मैं यह नाटक लिखूं।

इस नाटक का प्लाट दुर्लभरामजी ने स्वयं तथा अपने गुजराती कवि श्रीयुत गणपतिराम जी पण्डित की सहायता से कुछ तयार किया था। उक्त पण्डितजी गुजराती के विद्वान् अवश्य थे, परन्तु "दिल्ली वालों की उर्दू हिन्दी मिश्रित" भाषा लिखने में ज़रा सकुचाते थे। इस कारण इसके लिखने का भार मुझ पर डालागया। मुझ पर समय कम था, इसलिये १४ दिवस ही में जैसे तैसे मैंने उसको पूर्ण किया। वही आज आपके सम्मुख उपस्थित है।

सौभाग्य से इस नाटक को उक्त नाटक समाज के रङ्ग—मञ्च पर आशातीत सफलता प्राप्त हुई। उसके द्वारा कम्पनी ने अच्छा यशार्जन और धनार्जन किया। शायद इसीलिये कम्पनी के मालिकों ने इसके प्रकाशित करने तथा बेचने का अधिकार—जो मैं कंपनी को देचुका था—मुझे या मेरे राधेश्याम पुस्तकालय को देदिया है, जिसके लिये मैं उनका अनुगृहीत हूँ।

इस नाटक के एक ही दृश्य का कुछ भाग रामायण के इतिहास का है। शेष काल्पनिक है। नाटककार का नाटक लिखने के समय कल्पना के बिना काम पूरा मुश्किल से होता है। कथानक चाहे ऐतिहासिक हो या काल्पनिक, नाटक के मञ्च पर उसकी सृष्टि इसीलिये है कि उसके द्वारा समाज को कुछ शिक्षा प्राप्त हो। इसी उद्देश को यथासाध्य पूरा करने का प्रयत्न इस नाटक में किया गया है।

एक दोष अवश्य इसमें रहगया है जिसका अब सुधार होना असम्भव है। अर्थात् "ट्रेजिक" (Tragic) और "कोमिक" (Comic) कैरेक्टर्स (Characters) का जो सम्बन्ध इसमें मिला दिया गया है वह कुछ भद्दा सा जान पड़ता है। यद्यपि कापी को प्रेस में भेजते समय जहां जहां चेतनदास बाबा "सटक सीताराम" कहते थे वहां वहां मैंने "सटक नारायण" बना दिया है, परन्तु इतने पर ही मुझे सन्तोष नहीं है। यदि बदलता हूँ तो सारा नाटक फिर से लिखना पड़ेगा और नाटक इसी रूप में कोई तीन या चार वर्ष से स्टेज पर खेला जारहा है। अतएव अब 'बिंध गया सो मोती और रहगया सो पत्थर'।

यमुना विश्वनाथ, बद्रीनारायण आदि का मानवरूप में प्रकट होना, तथा भगवान् शङ्कर का वशिष्ठ और दशरथ को स्वर्ग की सैर कराना, पौराणिक विचारदृष्टि से असम्भव नहीं है।

अब मैं अपने मित्र श्रीयुत दुर्लरामजी तथा गणपतिरामजी को धन्यवाद देता हुआ, एक बात और कहकर इस नोट को समाप्त करता हूँ। वह बात यह है कि शीघ्रता और सरसरी में लिखे जाने के कारण यदि इस नाटक में कुछ त्रुटियाँ रहगई हों तो उदार पाठक एवँ समालोचक क्षमा करें; सूचना आने पर भविष्य में वे त्रुटियाँ सुधार दी जायँगी।

हम क्या, हमारी लेखनी में क्या समर्थ है।
अपनाओ तो सब कुछ है नहीं सब ही व्यर्थ है॥

वसंत पञ्चमी
सम्वत् १९७६

निवेदक—
राधेश्याम।

चौथे संस्करण पर वक्तव्य

श्रवणकुमारका चौथा संस्करण नाटक-प्रेमियों के सामने उपस्थित करते हुए आज मुझे बड़ा हर्ष हो रहा है। पाठकों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि पञ्जाब विश्वविद्यालयने सन् १९२३-२४ की हिन्दीरत्न परीक्षा के लिए इस पुस्तक को चुना है, और युक्तप्रान्तीय शिक्षाविभाग के डाइरेक्टर महोदयने संयुक्तप्रान्त के वर्नाक्यूलर और ऐंग्लोवर्नाक्यूलर स्कूलों में पारितोषिक में दीजानेवाली और लाइब्रेरियों में रक्खी जाने वाली पुस्तकों में इस नाटक को सम्मिलित कर लिया है। मैं समझता हूँ कि इस से मेरा नहीं बल्कि हिन्दी भाषा और हिन्दी प्रेमियों का ही गौरव बढ़ा है।

श्रावणी
१९८० विक्रम

विनीत—
राधेश्याम कथावाचक

नाटक के पात्र

पुरुष ।

विष्णु भगवान्—सनातनधर्मियोंके परमेश्वर, स्वर्गलोक के स्वामी ।
शङ्कर भगवान्—कैलासपति देवाधिदेव महादेव ।
भगवान् बद्रीनारायण—उत्तराखण्ड के प्रसिद्ध देवता ।
अग्निदेवता—साकार-रूप में अग्नि का देवता
धर्म्मराज या यमराज—मृत्यु का देवता ।
ऋषि वशिष्ठ—रघुवंशियों के राजगुरु, विख्यात ब्रह्मर्षि ।
ऋषि अत्रि—प्रसिद्ध ऋषि ।
महाराज दशरथ—अयोध्या नरेश ।
काशिराज—काशी के राजा ।
शान्त्वन—एक सदाचारी पुरुष, अंध और वृद्ध
श्रवण कुमार—शान्त्वन का पुत्र, नाटक का नायक ।
भानुशङ्कर—एक वृद्ध गृहस्थ ।
चम्पकलाल—भानुशङ्कर का तरुण पुत्र ।
नन्दशङ्कर—श्रवणकुमार का साला, विद्यादेवी का भाई ।
चेतनदास—एक धूर्त्त साधु ।
बेचरदास—एक सत्पुरुष, रामजीदास का पिता ।
रामजीदास—बेचरदास का पुत्र, चेतनदास का चेला ।
सूरसेन—दशरथ का मन्त्री ।
सत्यकीर्ति—दशरथ का सेनापति ।

स्त्री ।

यमुना—स्त्री-वेष में यमुना नदी ।

ज्ञानवती—शान्तनु की बूढ़ी और अंधी स्त्री, श्रवणकुमार की माता ।

विद्या—श्रवण कुमार की स्त्री, नाटक की नायिका ।

लक्ष्मी—भानुशङ्कर की स्त्री, चम्पक लाल की माता

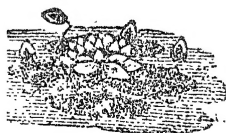
चमेली—चम्पकलाल की दुराचारिणी स्त्री ।

बिजली—नन्दशङ्कर की खिलाड़िनी स्त्री, विद्यादेवी की भावज ।

नन्दू की माँ—नन्दशङ्कर और विद्यादेवी की माता ।

रसिका
ललिता
मालती } बिजली की सहेलियां ।

इनके अतिरिक्त नट, नटी, द्वारपाल, दरबारी, ब्राह्मण, चोब-दार, पुजारी, पण्डे, सन्यासी, यमदूत, देवतागण आदि २ ।



* भूमिका *

श्रीसूरविजय-नाटक-समाज ने अपने मन्च पर धार्मिक और सामाजिक नाटक तो जनता के सामने वैसे कई पेश किये हैं, परन्तु उन सब में अधिक रोचक और लोकप्रिय "श्रवण कुमार" नाम का नाटक हुआ है। आज हमें इसी नाटक की संक्षिप्त आलोचना करनी है।

उक्त नाटक के लेखक, बरेली निवासी पण्डित राधेश्याम जी कविरत्न हैं। लेखक ने अपने इस नाटक का सामान्य उद्देश्य अपने ही "संक्षिप्त निवेदन" में बता दिया है। अर्थात् यह कि जिससे शिक्षा प्राप्त हो। इसके अतिरिक्त प्रस्तावना वाले-प्रारम्भिक-दृश्य में "विशेष उद्देश्य" भी नट के मुख से इस प्रकार कहलादिया है:-

पड़ के कुसङ्गति में करें अपमान जो माँ बाप का।
मुंह देख के पत्नी का छोड़ें ध्यान जो मां बाप का॥
उनको बताना है हमें सन्तान का क्या कर्म है।
कर्त्तव्य पत्नी का है क्या और पुत्र का क्या धर्म है॥

इस उद्देश्य में लेखक को कहां तक सफलता मिली है, यह हम आगे चलकर देखेंगे। उस से पहले इस जगह पर कुछ शब्द हमें सर्वसाधारण की सेवा में निवेदन करना आवश्यक प्रतीत होते हैं।

इस समय तक कितने ही ड्रामे अनेक कम्पनियों के द्वारा जनता के सामने पेश किये जाचुके हैं। इन नाटक कम्पनियों ने पर्दे, सीनरी और पोशाकों की बढ़ी चढ़ी तड़क भड़क दिखा कर आंखों में चकाचौंध पैदा करदी। बढ़िया साज़ के साथ सुहसुहाते तर्ज़ के "थियेट्रिकल सांग्स" Theatrical songs द्वारा रसीली मीठी गुञ्जारों से कानों को गुञ्जा दिया। शृङ्गार और सौन्दर्य भरे कथानक को लेकर मनचले पात्रों ने अपनी भाव-भङ्गी से दर्शकों

पर मोहिनी डालदी। यह सब कुछ हुआ, परन्तु इन सारी बातों ने देश को सुधार और उन्नति के मार्ग पर एक इञ्च भी आगे न बढ़ाया। बढ़ाना क्या उल्टा मीलों पीछे हटा दिया। और साथ ही पब्लिक की जेब और दिलो दिमाग़ भी ख़ाली कर दिये।

यह स्वाभाविक बात है कि मनुष्य का मन चंचल है और मज़ेदार ढङ्ग से सामने आनेवाली बुरी बातें-अच्छी बातों की अपेक्षा-उस पर जल्दी और गहरा असर डालती हैं। इसीलिए इन कम्पनियों की कुछ समय तक अच्छी तूती बोली। परन्तु प्रकृति के प्रकृत-विधान के अनुसार समय पलटा और उत्तम विचारों के शिक्षाप्रद नाटकों ने कम्पनियों की उस ज़बर्दस्त ज़हरीली लहर को पलट दिया। प्रस्तुत नाटक "श्रवण कुमार" इसी प्रकार के नाटकों में से एक है। इसीलिए हम इसके लेखक को देश के नाते बधाई दिये बिना नहीं रह सकते।

ऐसे नाटक के कथानक को धार्मिक ऐतिहासिक पुस्तक से लेना परमावश्यक था। इस कारण लेखक ने इस नाटक का मुख्य प्लाट उस पवित्र पुस्तक से लिया है, जो आज के दिन संसार की लाइब्रेरी में सब से उत्तम पुस्तक मानी जाती है। और जिसके आधार पर केवल भारतवासियों ने ही नहीं वरन् यूरुप और अमेरिका के अनेक गद्य पद्य लेखकों ने महत्त्व की पुस्तकें लिखी हैं। इस पुस्तक से हमारा इशारा रामायण की तरफ़ है, जिसमें माता-पिता, भाई-बहिन, स्त्री-पुरुष, शत्रु-मित्र, राजा-प्रजा-आदिकों के धर्म तथा व्यवहार-सम्बन्धी उच्च कोटि के ऐतिहासिक आदर्श मौजूद हैं।

सम्पूर्ण नाटक पर विचार की दृष्टि डालते हुए हम इस परिणाम पर पहुँचे बिना नहीं रह सकते, कि जिन सामान्य और विशेष उद्देश्यों को लक्ष्य करके यह नाटक लिखा गया है वे उच्च कोटि के हैं, और लेखक को उनकी पूर्त्ति में बहुत बड़ी सफलता प्राप्त हुई है। विशेष उद्देश्य की पूर्ति तो नायक और नायिका के चरित्र-चित्रण में होजाती है और सामान्य उद्देश्य की पूर्ति अन्यान्य पात्रों के कैरेक्टर्स (Characters) में मिलती है। इन दोनों उद्देश्य-पूर्तिओं के ढङ्ग को अब ज़रा पृथक् पृथक् देखना चाहिये।

नाटक का नायक श्रवणकुमार बड़े उत्कृष्ट चरित्र का युवक है। बल्कि यों कहना चाहिये कि वह इस नाटक की जान है। आदि से लेकर अन्त तक उसका जीवन सचाई और पवित्रता से भरा हुआ है। वह दृढ़ता के साथ कष्ट सहनेवाला, माता पिता का सच्चा सेवक और उपासक है। बुड्ढे और अन्धे माता पिता-ज्ञानवती और शान्त्वन-को कांवर में बिठाल कर, उस कांवर को कन्धों पर लेकर पैदल ही दूर २ के तीर्थ कराना, ऐसा कठिन और दुस्साध्य कार्य है जो आज कल के सुकुमारता और कोमलता के युग में एक असम्भव सी घटना जान पड़ती है। विस्तार बढ़ जाने के भय पर भी 'श्रवण' के कुछ थोड़े से उन वाक्यों का-जो उसके सच्चे और वास्तविक चरित्र पर प्रकाश डालते हैं-नीचे उद्धृत करना समुचित मालूम होता है:-

१-यही है सब से ऊँचा ज्ञान, पिता माता ही हैं भगवान्।

अंक १, दृश्य १ [माता पिता की भक्ति]

और आगे देखिये-

२-अगर इस खाल के जूते बनें तो खाल हाजिर है।
अगर इस आंख का सुर्मा बने तो आंख शाकिर है॥

अंक १ दृश्य ४ [निष्ठा]

३-सूरज चहे आकाश से पृथ्वी पै उतर आय...इत्यादि

अंक १ दृश्य ७ [दृढ़ता]

४-जानी है पुराण और शास्त्र की कथा अनेक-इत्यादि

अंक १ दृश्य ७ [अविचल पितृ-भक्ति]

परन्तु इन सब से अधिक प्रभावपूर्ण और जोरदार, श्रवण की मृत्यु के समय की लालसा है-

"मैं जहां जाऊँ वहाँ सेवा करूँ माँ बाप की"

और फिर जब स्वर्ग में जी उठता है तब भी यही पुकार है..."माता पिता, माता पिता"-। इस से बढ़ कर माता पिता की सेवा अथवा भक्ति और क्या होसकती है? ऐसी अनन्य भक्ति और अनुरक्ति का स्वाभाविक फल इस लोक में यश और परलोक में स्वर्ग का आनन्द होता है।

श्रवण अपने माता पिता की सेवा का जितना ख़याल रखता है उतना ही उसकी स्त्री विद्यादेवी भी सास श्वशुर की सेवा का अपूर्व भाव दिखलाती है। स्त्री को अपने पति की सेवा का सच्चा भाव दिखाना तो एक सामान्य कर्त्तव्य है; किन्तु सास श्वशुर की सेवाका भाव (जैसा कि नाटक की नायिका विद्यादेवी के निम्नलिखित वाक्यों से व्यञ्जित होता है) वास्तव में प्रशंसनीय और स्त्री-मात्र के लिए उपदेशप्रद है:—

(१) दिखलाऊंगी मैं होती हैं बस ऐसी युवतियाँ.........

(२) स्वामी के भी स्वामी हैं पती के भी पती हैं.........

[अंक १ दृश्य २]

इसी माता पिता की भक्ति का उल्टा नमूना नये फ़ैशन के पात्र चम्पकलाल और उसकी बीबी चमेली हैं। यह दोनों ही चम्पकलाल के माता पिता (भानुशंकर और लक्ष्मी) से जैसा बुरा व्यवहार करते और बेसरोसामान उन्हें घर से निकाल देते हैं, और फिर इस नीच कर्म का जैसा परिणाम वे आगे चलकर भोगते हैं, वह आज कल के उन युवकों को, जिनका विवाह किसी फ़ैशनएबिल लेडी से हुआ हो, विशेष रूप से शिक्षाप्रद है। इनके अतिरिक्त और भी छोटे २ पात्र हैं जो इस विषय पर अच्छा प्रकाश डालते हैं।

अब हम नाटक के सामान्य उद्देश्य पर विचार करते हुए यह देखते हैं कि समाज को और क्या क्या शिक्षायें इस नाटक से प्राप्त हो सकती हैं।

१-इस विषय में सब से पहिले हम वे ही बातें समझते हैं जिन पर आजकल देश में प्रचण्ड आन्दोलन हो रहा है। अर्थात् राजा और प्रजा का पारस्परिक सम्बन्ध। इस राजा प्रजा के सम्बन्ध के विषय पर महाराज दशरथ का उदात्त चरित्र बड़ा निर्मल और स्वच्छ प्रकाश डालता है, और प्रत्येक शासक को शिक्षा की नाईं कुछ बातें बतलाता है:—

(अ) "प्रजा है जब कि राजा से तो राजा भी प्रजा से है"। प्रजा का राजा को पिता के समान और राजा का प्रजा को अपनी सन्तान के समान मानना, जंगली जानवरों का शिकार केवल प्रजा की रक्षा के लिए उचित समझना।

(ब) किसी अच्छे काम करनेवाले महापुरुष की सहायता के लिए अपनी शक्ति और रुपया उसके अर्पण करना, फिर चाहे वह श्रवणकुमार की तरह बिना राज-सहायता के अपने ही बल पर काम करे।

(स) अगर कोई अपराध होजाय तो उसे छिपाने की चेष्टा न करना, बल्कि सचाई के साथ उसे साफ़ स्वीका करना।

२-दूसरी बात सर्वसाधारण के मतलब की है। अर्थात् स्त्री-पुरुष का परस्पर का व्यवहार, जिस पर सारे देश की उन्नति निर्भर है।

नाटक की नायिका विद्यादेवी एक आदर्श देवी है, जो बतलाती है कि-"आज्ञा में पति की चले यह नारी का कर्म, शिक्षा देवे नारि को यह नर का है धर्म"। इसके अतिरिक्त स्त्रीको दया, नम्रता आदि गुण भी आवश्यक बतलाए गए हैं। मगर यह याद रहे कि देश में जहां विद्यादेवी जैसी पतिव्रता स्त्री की (जिसके सती-धर्म को चम्पकलाल जैसा दुष्ट व्यक्ति नष्ट न करसका) ज़रूरत है तो वहां यह भी ज़रूरत है कि पुरुष भी श्रवणकुमार के समान पक्के नारी-व्रत धर्म के पालन करनेवाले हों। इस विषय में भी नाटक में एक बिल्कुल उल्टा नमूना बाबा चेतनदास और चमेली दिखलाए गए हैं। इन पतित पापियों का अन्त में (नरकयोल दृश्य में) जो परिणाम दिखाया गया है वह जितना लोमहर्षण है उतना ही शिक्षा देनेवाला है।

चमेली को उसके पति चम्पकलालने (जैसा कि आजकल अक्सर रिवाज है) फ़ैशनएबिल लेडी बनाया। इसका जो खेदजनक परिणाम हुआ वह लेखक ने खूब दिखाया है। इतने पर भी जो नवयुवा फैशन के अंध-भक्त बने रहेंगे तो उनको बस यह ही सुनना पड़ेगा—

"अब देख अपनी मौज उड़ाने का नतीजा।
जोरू को मजेदार बनाने का नतीजा" ॥

३ तीसरी बात जिस पर इस नाटक ने प्रकाश डाला है वह अच्छी और बुरी सङ्गति का प्रभाव है। वास्तव में इस "संगति" विषयक शिक्षा की आजकल सब से बड़ी आवश्यकता है। यहां पर शिक्षा का

मतलब आजकल के से स्कूल और कालिजों में नाम लिखालेना, या कुछ गिनती की किताबें पढ़ लेना, या किसी भाषा में गणित, भूगोल आदि पढ़ लेना, या कोई यूनिवर्सिटी की डिग्री प्राप्त कर लेना नहीं है; बल्कि अच्छी संगति और बुरी संगति के द्वारा होनेवाले अच्छे बुरे परिणामों की ठीक २ पहिचान और सम्यक् ज्ञान प्राप्त करने लायक योग्यता का आजाना है। इस प्रकार की योग्यता प्राप्त कर लने पर मनुष्यों में अपने आप को खोटे मार्ग से बचा कर शुद्ध, दृढ़ और धार्मिक बनाने की सामर्थ्य आजाती है। इसमें सन्देह नहीं कि आचरण के बिगड़ने सुधरने का संगति से बहुत बड़ा सम्बन्ध है। देखिए न, हमारी नाटक की नायिका का भाई नन्दशंकर एक पवित्र आत्मा है। किन्तु वही पवित्र आत्मावाला युवक, नास्तिक चम्पक-लाल के बहकाने में आकर, झूठ बोलने का पाप कर के (मां की बीमारी का बहाना बताकर) विद्यादेवी को अपने साथ बुला कर लाता है। इसी तरह उसकी माता भी अपनी बहू और उसकी सखियों के कुसंग में पड़कर (उनके कहने से) नाचने लगजाती है। लेकिन उसी समय जब विद्यादेवी वहां पहुंच-कर मां को रोग-शय्या पर पड़ी हुई देखने के बदले नाचता हुआ देखती है तो 'कुसंग' के कारण रचे हुए नन्दशंकर के षड्यन्त्र की क़लई खुल जाती है, और अन्त में विद्यादेवी के 'सत्संग' और सदुपदेश से दोनों पति पत्नी सुमार्ग में आजाते हैं। इसी तरह हास्य के दृश्य में देखिये कि बेचारे बेचरदास के नाबालिग़ लड़के रामजीदास पर बाबा चेतनदास के 'कुसंग' का रंग ऐसा चढ़ता है कि रामजीदास को अपने बाप की भी बात सुनना नागवार है। बस गुरु बाबा ही की भक्ति उसके हृदय में है।

नाटक की नायिका विद्यादेवी का जो उज्वल और निर्मल चरित्र है वह अधिकतर श्रवणकुमार के सत्संग का प्रभाव है।

इन तीन लाभदायक विषयों के अतिरिक्त कुछ और भी उपयोगी शिक्षा देनेवाली बातों पर नज़र डालना आवश्यक है। लेखक ने बतलाया है कि ज़हरीले गीतों से और मुस्टंडे पंडों के हथकंडों से होशियार रहने की ज़रूरत

है। नाटक की नायिका शिवादेवी ने अपनी मां के सामने कितनी खूबसूरती के साथ बतलाया है कि गाने वे होने चाहिए जो उपदेश से भरे हुए हों, न कि गंदे शृंगार रस में सने हुए। यमुना नदी के तट पर पंडों के जमघट का दृश्य सुधार की इच्छा से लेखक ने दिखाया है। और बाबा चेतनदास का मन्दिर तथा आदि से अन्त तक उस दुराचारी साधु का चरित्र विशेषतः स्त्रियों की आंखें खोलने के लिए है। ऐसे साधुओं की रोक थाम के लिए लेखक ने क़ानूनी कौन्सिलों से अपीलें भी की है। हमें आशा है कि लेखक की यह अपील निष्फल न जायगी।

सारे नाटक का समष्टि रूप से विचार करते हुए हम इसे पवित्र नाटकीय-साहित्य में एक ऊंचा स्थान देने को तयार हैं। नाटक के सभी पात्र अच्छे चरित्रवाले हैं, और जिनका चरित्र गिरा हुआ है प्रायः वे भी आगे चलकर तीसरे अंकमें बड़ी सुघरता के साथ बदल कर उच्च कोटि के धार्मिक चरित्रवाले बनगए हैं। नाटकीय ढङ्ग के प्रास और अनुप्रासान्त वाक्य तो सभी जगह भरे पड़े हैं। शृङ्गार रस के भी एक दो दृश्य बतौर चटनी के रख दिए गये हैं।

दर्शकों के चित्त पर गहरा प्रभाव डालनेवाले दृश्य भी कई हैं। इनमें से विशेष रूप से उल्लेख योग्य पहले अंक में मां की ममता का वह दृश्य है जिसमें लक्ष्मी अपने पति के साथ अपने बेटे चम्पकलाल के घर से निकलती है-बल्कि यों कहिये कि निकाली जाती है। उस समय का उसका यह वाक्य-

"न लोटा दे न थाली दे, मगर इतना तो दे बेटा।
तू यह कह दे मेरी माता, मैं यह कहदूं मेरे बेटा"॥

हृदय को बींध डालता है।

अन्तिम अंक में श्रवण की मृत्युवाला दृश्य भी आंखों से आंसू टपकाने-वाला है, और मध्य के दृश्यों में चम्पक और चमेली का लड़ झगड़ कर एक दूसरे से सम्बन्ध तोड़नेवाला दृश्य बस संसार की स्वार्थपरायणता का नमूना इतनी स्पष्टता के साथ सम्मुख ले आता है कि सच्ची और निर्मल प्रकृतिवाले

व्यक्तिओं के चित्त में उसे देखकर सचमुच वैराग्य उत्पन्न होने लगता है। इन विशेषताओं के अतिरिक्त लेखक ने और भी ऐसी ख़ूबियां दिखाकर नाटक को सुपाठ्य और रोचक बनाया है जिनके विस्तृत विवरण देने की आवश्यकता नहीं मालूम होती।

विषय का विस्तार बहुत होचुका है इसलिये और बातों को छोड़ कर अन्त में अब इस ड्रामे की तस्वीर का दूसरा पहलू भी देखना उचित है। इस नाटक में भारतवर्ष के अतीत कालीन इतिहास का चित्र खींच कर जनता के सन्मुख उपस्थित करने की चेष्टा की गई है। किन्तु ड्रामे के अधिक मनोरञ्जक बनाने के लिए ऐसी बातों का समावेश भी कहीं कहीं किया गया है जो ऐतिहासिक नहीं हैं। इतिहास से बाहर की बातों की यह मिलावट कहीं २ ऐसी है जिसका समय श्रवणकुमार का जीवनकाल (रामायण के समय से पहिले का युग) तो नहीं, हां, आजकल का ज़माना माना जासकता है। नाटक को ऐतिहासिक दृष्टि से देखने वालों की नज़रों में यह त्रुटि इस नाटक में ज़रूर खटक सकती है। किन्तु यह बात ध्यान में रख कर कि ड्रामा लिखनेवाले को नाटक के मुख्य प्लाट की उत्तमता, सर्वसाधारण में से अधिकांश जन-समुदाय की मनोरञ्जकता, गद्य की प्रौढ़ता और पद्यकी मधुरता, देश को विविध प्रकार की उपादेय शिक्षा तथा पात्रों की चरित्रोत्कृष्टता इत्यादि सैकड़ों बातों का ध्यान रखना पड़ता है (जो कि सामान्य रीति की गद्य-पद्य-मय पुस्तकों के लिखने में नहीं होता), हम कह सकते हैं कि लेखक ने कवि-स्वातन्त्र्य [Poetic License] की सीमा का उल्लंघन नहीं किया है।

उपसंहार में हम लेखक को एक बार फिर सर्वसाधारण की ओर से बधाई देते हैं, और आशा करते हैं कि जनता इस नाटक से वास्तविक लाभ उठावेगी। केवल नाटकीय साहित्य में ही नहीं, हिन्दी साहित्य के ग्रन्थों में भी इस नाटक को योग्य स्थान मिलना चाहिए।

द्वारिकाप्रसाद बी० ए०

—०—



॥ ॐ ॥

श्रवणकुमार

नाटक

मङ्गलाचरण

[इस दृश्य को नाटक की प्रस्तावना समझिए]

गाना

सूत्रधार नट, नटी आदि—

ओं शिवशङ्कर, सुखकर, नाथ वरदायक महादेव ।
प्रभु दया करो हमपर, पाप टलें मन के सब ॥
भक्त जनन के पालनहार, तारनतरन जगदुद्धार ।
गौरीपति, जगपति, गंगाधर, शशि-शेखर ॥
विश्वेश्वर, [illegible], कीजे सब दोष सङ्कट नाश ॥

नट—जयति गजानन, गणपते, गणनायक, गणराज ।
विघन.हरन, मंगल करन, भरन जनन, सुखसाज ॥

नटी—नाथ, आज तो रङ्गमञ्च बड़ा सुहावना नज़र आता है, चारों ओर आनन्द ही आनन्द दिखलाता है; जिससे यह समझ में आता है कि आज आप कोई अद्भुत खेल रचायेंगे, कोई नवीन धार्मिक नाटक दिखायेंगे ।

नट—हां प्रिये, धार्मिक और सामाजिक भावों का संगम करके आज हम अपनी रंगभूमि को तीर्थराज बनायेंगे ।

नटी—अर्थात् ?

नट—चारों आश्रमों में श्रेष्ठ गृहस्थाश्रम का अभिनय रचायेंगे, माता पिता की भक्ति, पुत्र धर्म का उद्देश्य, सास ससुर की सेवा और पति-धर्म का उपदेश—अपने देश के भाइयों और अपने समाज की बहिनों को देते हुए—एक आदर्श पितृ-भक्त का चरित्र दिखायेंगे; संसारके कुपूतों को सपूत बनायेंगे—

मुख्य कथा का कल्पना, द्वारा कर विस्तार ।
आज रचायेंगे प्रिये, नाटक "श्रवणकुमार" ॥

नटी—अहा ! श्रवण को आनन्द देनेवाला श्रवणकुमार ! रामायण में जिसकी कथा है वही श्रवणकुमार अथवा और कोई राजकुमार ? ।

नट—और कोई नहीं, वही अयोध्या नगरी में सरयू के किनारे निवास करनेवाले शान्तनु ऋषि और ज्ञानवती देवी का

पुत्र श्रवणकुमार, जिसने माता पिता की भक्तिरूपी नौका से संसार रूपी समुद्र का पार पाया है, जिसने माता पिता की सेवा में अपना तन, मन, धन ही नहीं, सम्पूर्ण जीवन लगाया है।

नटी—वह श्रवणकुमार ?

नट—हां, वह श्रवणकुमार। कन्धे पर माता पिता की कांवरी उठानेवाला, उन्हें नाना तीर्थों की यात्रा करानेवाला, जिसकी सेवकाईका झंडा मेरु के शिखर पर लहराया है, जिसने आकाश के नक्षत्रगण में एक उत्तम स्थान पाया है, वह श्रवणकुमार—

सती का सत, सुपूतों का सुयश, उपदेश दूना है।
पिता माता की भक्ती में श्रवण—नाटक नमूना है॥

नटी—क्यों न हो, जहां गणपति को मनाकर दुर्लभ से भी दुर्लभ वस्तु को सुलभ करके लाने वाले आप, और अपनी लेखनी से चरित्रों के चित्र बनाकर एक अनोखा रङ्ग जमानेवाले हमारे कविरत्न पण्डित राधेश्याम, वहां ऐसेही ऐसे उपदेशप्रद नाटक न खेलेंगे तो क्या 'गुलो बुलबुल' के झगड़े छिड़ेंगे ?

अब समय बताता है हमको, नाटक के दृश्य मार्मिक हों।
सब खेल—खेल के साथ साथ, सामाजिक और धार्मिक हों॥

नट—ठीक यही इस नाटक का भी उद्देश्य है।

पड़के कुसंगति में करें अपमान जो मां बाप का।
मुंह देखके पत्नी का छोड़ें, ध्यान जो मां बाप का॥

उनको बताना है हमें, सन्तान का क्या कर्म्म है ।
कर्तव्य पत्नी का है क्या, और पुत्र का क्या धर्म्म है ॥

❀ गाना ❀

तर्ज—

सुनो भारत-पुत्रो, धर ध्यान,
पितृ-भक्ति है परम प्रधान ।
श्रवण का श्रवणामृत कर पान,
सभी बनजाओ श्रवण समान ॥
प्रजा नृपति को, शिष्य गुरू को, सती पतीको जाने ।
त्यूंही पुत्र-पिता माता को, ईश्वर अपना माने ॥
उसी का होता है यश गान,
यही कहते हैं वेद पुरान ।
सच्ची भक्ति पिता माता की, श्रवणदेव ने कीन्ही ।
तीर्थ कराये अन्धों को, कन्धों पर कांवर लीन्ही ।
करदिया तन मन धन बलिदान,
मिला नक्षत्रों में सुस्थान ॥

—०—



स्थान—राजा दशरथ का दर्बार

(राजा दशरथ सिंहासन पर विराजमान हैं, एक ओर गुरु वशिष्ठ शोभायमान हैं, दूसरी ओर राजमन्त्री विराजमान हैं, दरबारी आदि यथा स्थान हैं)



❀ गाना ❀

गायक—

श्रीमहाराज, अमर रहो ।
    दशोंदिशि यश रहे तुम्हारो सदा ॥
सूर्यकुलभूषण भूप पाओ नित नव जय ।
गावें सब गुण, होवे शत्रुकुल का क्षय ॥

—o—

* नाच *

पामागारे, नीधा पामागारे, धानी गारे पाधानीरे, गारे नीसा, सानी धापा, धानी सारेगा, धानी सारे, पाधानीसा, मामापाधा, रेगा पागारे नीसा ।

गारेसा, रेसानी, सानीधा, नीधापा, धापामा, पामागा, मगारे, गारेसा, मापाधानी, सारेसानीसा, गामा, पाधा, नीधापा, पामा, रेगामा, गारे, सानीसा ॥

—०—

दशरथ—(मन्त्री से) सूरसेनजी, प्रजा जिस प्रकार राजा से प्रेम रखती है, राजा को भी उसी प्रकार प्रजा से प्रेम रखना चाहिए। प्रजा यदि राजा को पिता के समान मानती है तो राजाको भी प्रजा के लिए अपनी सन्तान समझना चाहिए—

बजे ताली युगल कर से, नियम यह ही सदा से है।
प्रजा है जब कि राजा से, तो राजा भी प्रजा से है॥

सूरसेन—सत्य है श्रीमहाराज।

दशरथ—कहिए, राज्यमें शान्ति है? प्रजा अपने कर्तव्य का पालन करती है? शासक—मण्डली प्रजा से प्रेम—भाव रखती है? देव मन्दिरों की पूजा—विधि, पण्डित—समाज का आदर सत्कार,

विद्या-शिल्पालय आदि का प्रबन्ध, सब ठीक होता है ? कहीं अत्याचार तो नहीं है ? आज का कोई नवीन समाचार तो नहीं है ?

सूरसेन-(हाथ जोड़कर) श्रीमहाराज, सूर्यवंश का प्रताप अविच्छिन्न है। आप सरीखे चक्रवर्ती राजराजेन्द्र के भुजदण्ड के प्रताप से शत्रु शिर झुका रहे हैं। यश और न्याय रघुवंश का डङ्का बजा रहे हैं :—

धन, धान्य वस्त्र और दूध पूत से, घर घर है आबादानी।
सिंह औ बकरी सरयू तट पर, पीते हैं एक घाट पानी॥

[द्वारपाल का प्रवेश]

द्वारपाल-राजराजेन्द्र की जय हो। शान्तवन ऋषि के पुत्र श्रवण-देव राजसभा में पधारते हैं।

दशरथ-बड़े आनन्द की बात है, जाओ सम्मानपूर्वक ले आओ।

द्वार०-जो आज्ञा।

[द्वारपाल के साथ कई सभासद् श्रवणदेव को लेने के लिए जाते हैं]

दशरथ-आज का दिन धन्य है जो श्रवणकुमार इस राज-सभा में आते हैं।

[श्रवण का आना]

❀ गाना ❀

श्रवण–

यही है सबसे ऊंचा ज्ञान,
पिता माता ही हैं भगवान।
माता गौरी का रूप है, पिता शंकर सरूप है ॥
गावें वेद पुराण । यही है० ॥
जप,तप,तीरथ,योग,यज्ञ,व्रत, मात पितामें जान ।
प्रेम से पूजन करिए, भाव से बन्दन करिए ॥
होवे कल्याण । यही है० ॥



सभासद्–पधारिए, पधारिए, श्रवणदेव, पधारिए ।

श्रवण–पहला प्रणाम करता हूँ मैं श्रीमान् पिता और माता को ।

कुछ सभासद्–धन्य, धन्य ।

श्रवण–फिर अपनी जननी जन्म भूमि–

कुछ सभासद्–धन्य धन्य ।

श्रवण–पृथ्वी को और विधाता को ।

तीजा प्रणाम करता हूँ मैं, श्रीवशिष्ठ से गुरु ज्ञाता को ।

चौथा प्रणाम करता हूँ, श्रीदशरथ से नृप सुखदाता को ॥

दशरथ–(सिंहासन से उठकर)–

धन्य घड़ी और धन्य दिन, आये श्रवणकुमार।
शीघ्र आज्ञा कीजिए, है दशरथ तैयार ॥

वशिष्ठ—निःसन्देह—

ज्यों तारों में चन्द्रमा, जल में अमृत धार।
पुत्र रत्न में एक है, त्योंही श्रवणकुमार ॥

(श्रवण से) कहो पुत्र, किस कारण से आना हुआ ? क्या चिन्तवन है ? क्या प्रयोजन है ?

श्रवण—यह निवेदन है कि मेरे माता पिता का युगल रूपही मेरा एकमात्र धन है। उनमें जो स्थायी अन्धापन है वह मेरे लिए असीम चिन्ता का कारण है। मुझे अपने जीवन की चिन्ता नहीं, भोजन की चिन्ता नहीं, वसन और भूषण की चिन्ता नहीं, चिन्ता है उनके अन्धेपन की। यदि मेरी सेवा से उनका अन्धापन जाय तो मैं कठिन से कठिन पुरुषार्थ करने के लिए भी तैयार हूँ। यदि मेरे पुण्यों से उनके नेत्र अच्छे होजायें तो मैं अपने जन्म जन्मान्तर के पुण्य उनपर न्यौछावर कर देने के लिए भी तैयार हूँ। मैं अन्धा होजाऊं परन्तु उनका अन्धापन जाता रहे तो मैं अपने नेत्रों की ज्योति समर्पण करने के लिए भी तैयार हूँ—

मुझपै चहे बादल घिरें आफ़त के बला के।
खुल जायँ मगर नेत्र मेरे माता पिता के ॥
बतला के कोई ओषधी रोगी को चैन दो।
उपकार होगा आपका अन्धों को नैन दो ॥

वशिष्ठ—पुत्र, तुम अपने माता पिता के अन्धे होने का कारण जानते हो ?

श्रवण—जानता नहीं जानना चाहता हूँ । (स्वगत) मैं तो केवल अष्टप्रहर माता पिता की सेवा करना ही जानता हूँ ।

वशिष्ठ—अच्छा तो सुनो । तुम्हारे माता पिता के पुत्र नहीं होता था । उन्हों ने पुत्र के लिए नैमिषारण्य तीर्थ में जाकर जब अनेकानेक तप किये तब श्री चतुरानन ब्रह्माजी ने प्रगट होकर कहा कि 'जब तुम्हारे पुत्र उत्पन्न होगा तब तुम अन्धे होजाओगे, यह शर्त तुम स्वीकार करो तो हम पुत्र देने के लिए तैयार हैं' । दम्पति ने अन्धे होने की बात स्वीकार करके पुत्र प्राप्ति का वरदान मांगलिया । उसी वरदान के प्रभाव से तुम्हारा जन्म हुआ ।

श्रवण—अहा ! धन्य है, धन्य है ! आज मुझे मालूम हुआ कि मैं माता पिता का कितना ऋणी हूँ । ओह ! इतनी ममता ! ऐसी उदारता ! पृथ्वी पर सोये ! पत्ते खाये ! सर्दी गर्मी सहन करके घोर तपश्चर्या की ? अन्तमें अन्धे होने की शर्त भी स्वीकार की ! पुत्र स्नेह का आदर्श यह है । अब मैं भी अपने माता पिता की सेवा में अपने जीवन को वलि देकर संसार को बताऊंगा कि मातृ—पितृ—भक्ति का उदाहरण यह है—

जो जीभ न नाम जपे उनका, तो जीभ को खींच निकारूं मैं ।
जो हाथ न सेवा करें उनकी, तो हाथ भी काट के डारूं मैं ॥

शिर जो न झुके पग में उनके, तो धड़ से ताहि उतारूं मैं ।
जिन नैन दिये इस जीवन पर, यह नैन उन्हीं पर वारूं मैं ॥

वशिष्ठ—धन्य, तुम जैसे सुपुत्रों पर ही संसार खड़ा हुआ है। ऐसे ही भावों से धर्म का आकाश निर्मल होरहा है। आओ बेटा, आगे आओ। तुम्हारे माता पिता के अच्छे होने का योग हम बताते हैं। प्रयाग, काशी, बदरिकाश्रम आदि २ तीर्थों की यात्रा कराने पर तुम्हारे माता पिता का अन्धापन जायगा, परमात्मा की कृपा से उनके नेत्रों में दिव्य तेज आजायगा—

जिनकी कृपा से लूले भी पर्वत पै जाते हैं।
जिनकी दया से गूंगे भी भाषण सुनाते हैं॥
पर्वत को जो पल मात्र में राई बनाते हैं।
जो दीन की पुकार को सुन दौड़े आते हैं॥
तज देते हैं गरुड़ को जो भक्तों के वास्ते।
आंखें भी वही देंयगे अन्धों के वास्ते॥

श्रवण—धन्य, गुरुदेव की कृपा से मेरे हृदयकी कली खिली। निराशा में आशा की झलक मिली—

अब मैं मात पिता को जाकर यह सन्वाद सुनाऊंगा।
और प्रतिज्ञा यह करता हूँ सारे तीर्थ कराऊंगा॥

दशरथ—परन्तु अन्धे माता पिता को समस्त तीर्थ कैसे करा सकोगे? बड़े बड़े गहन गम्भीर वनों में, महान् पर्वतों की कन्दराओं में, व्याल, व्याघ्र वाली भयानक राहों में, किस प्रकार लेजा सकोगे?

श्रवण—परमात्मा की कृपा से, गुरु वशिष्ठके आशीर्वाद से और आप के प्रताप से—

उत्तम पवित्र काष्ठ की कांवर बनाऊंगा ।
ठाकुर की तरह उनको मैं उसमें बिठाऊंगा ।।
श्रद्धाके साथ फिर मैं वह कांवर उठाऊंगा ।
कन्धे पै अपने माता पिता को चढ़ाऊंगा ।।
लेजाउँगा बस इस तरह तीर्थों के द्वार पर ।
नौका यह पार होवेगी प्रभु के अधार पर ।।

सब सभासद्—धन्य, धन्य, श्रवणकुमार, तुम्हारी मातृ पितृ भक्ति को धन्य है

❀ गाना ❀

श्रवण—

गुरुवर, मोहिं दीजे यह वरदान,
सेवा में होवे यह तन बलिदान ।
माता पिता की भक्ति छोड़ूं न जीते जी ।
जीवनधर्म मानूं मात पिता,
सबसे उत्तम जानूं मात पिता ।

(प्रस्थान)

—०—



दूसरा दृश्य



स्थान—चम्पकलाल का मकान

(चम्पकलाल का आना)

चम्पक०—बस बहार ही बहार है। सावन हो या फागुन, वर्षा हो या वसन्त, हर मौसम में हम जैसे रंगीले जवानों के लिए बहार ही बहार है। हम रंगीले, तो हमारी स्त्री भी रंगीली,। हमारा नाम चम्पक तो उसका नाम चमेली। हम नये जवान तो वह नई नवेली। हमारा रूप ऐसा जैसा रुपया, और उसका जैसे नये सिक्के की धेली।

(चमेली का आना)

चमेली—अरे वाहरे मेरे रंगीले भर्तार। तुम्हारी सजीली सूरत पर मैं वारी वारी जाऊं, दिलदार।

चम्पक०—अरी वाहरी मेरी बोलती मैना, मेरी फली फूली क्यारी, मिज़ाज तो ख़ुश है? मेरा बूढ़ा बाप और मेरी बूढ़ी मां तेरी ख़ातिर करते हैं या नहीं? तुझे सुख देते हैं या नहीं?

चमेली—अजी मैं उनकी सेवा करते २ हार गई। वह बुढ़िया मुझे बहुत सताती है। कुछ काम धाम करती नहीं, खाट के नीचे पांव धरती नहीं, बैठे बैठे मुझपर हुक्म चलाती है। और मैं जब

कुछ दबी जुबान से कहती हूँ तो मुझे आंखें दिखाती है। एक २ की सौ सौ सुनाती है।

चम्पक०—और वह बूढ़ा?

चमेली—उस बूढ़े की कुछ न पूछो, वह तो मुझे इस तरह धमकाता है जैसे मैं उसी की हूँ। मेरा साड़ी पहनना उसे बुरा लगता है, मेरा पड़ोसिनों के साथ बैठकर गाना बजाना उसे बुरा लगता है, दो घड़ी को तुम से बातें करती हूँ तो झल्लाता है, कभी बाज़ार से कुछ मिठाई मंगाती हूं तो उसकी आंखों में खून उतरआता है। तुम दिनभर बाहर रहते हो, बिना तुम्हारे अब मुझसे घर में नहीं रहा जाता है। एक दिन की हो, दो दिन की हो, यह तो जन्म भर की मुसीबत है। क्या मेरी आबरू खाक में मिलाने ही के लिए मुझ से ब्याह किया था?

चम्पक—ओहो! इतनी नीचता! इन बूढ़े बुढ़ियों में ऐसी निर्दयता! ठहरो, मैं आजही ठीक करदूंगा, जरा कपड़े उतार आऊं।

[चम्पकलाल का जाना, चमेली की सास 'लक्ष्मी' का घड़ा लिए हुए आना]

लक्ष्मी—बेटा चमेली, मैं सब पानी भरचुकी, पिछला घड़ा भरने को जाती हूँ। तबतक जरा घरको बुहार लेना।

चमेली—(मुंह बनाकर) 'घर को बुहार लेना!' क्या मैं तेरी टहलुई हूँ? क्या मैं बुहारी देने को इस घर में आई हूँ? बड़ी आई पानी भरनेका मुझपर अहसान करनेवाली। (फिर मुंह बनाकर)

"पिछला घड़ा भरने को जाती हूँ" । भरने को जाती है तो क्या मेरे लिए ? जाती होगी अपने खसम के लिये, अपने बेटे के लिए, अपने चहीतों के लिये, (कोहनी मारते हुए) अपने होतों सोतों के लिये।

[लक्ष्मी गिर पड़ती है, घड़ा टूट जाता है]

लक्ष्मी—हायरे ! मर गई ! दया कर, बेटी, दया कर । अपनी बूढ़ी सास को मारते हुए तुझे दया नहीं आती ?

चमेली—दया ? तुझे तो मार मार कर सीधी करूंगी । रांड मरती भी तो नहीं; ऐसी चुड़ैल को बुखार भी तो नहीं आता; ज़ाने कितनी उम्र लेकर आई है ।

लक्ष्मी—मैं तो खुदही भगवान से चाहती हूँ, कि हे भगवान् ! मुझे अब इस दुनियां से उठाले ।

चमेली—हां, तुम दोनों अब मर जाओ ।

लक्ष्मी—उन्हें न कोस । मुझे चाहे मार भी ले पर उन्हें न कोस ।

चमेली—मैं तो ऐसे ही कोसूंगी और खूब कोसूंगी । तुझे वह बूढ़ा प्यारा है तो तू उसे पालने में झुला । मैं तो उसपर खाक भी नहीं डालूँगी । क्या कहूँ तेरा बेटा मेरे वश का नहीं, नहीं तो बता देती ।

[बूढ़े भानुशंकर का प्रवेश]

भानु०—अरेरे, बेटी चमेली, बूढ़ी के हृदय को मत दुखा !

उसके सफ़ेद बालों पर दयाकर । हे भगवान् ! कैसा समय आगया ! बहू ने अपनी सास को दासी समझलिया ।

चमेली—रहने भी दो । तुम घर के बड़े बूढ़े होकर ऐसी बातें करते हो । मुफ़्त का माल खाना और ऊपर से घुर्राना (लक्ष्मी को भानुशंकर की ओर धक्का देकर) जा, अब अपने खसम से बुहारी क्यों नहीं लगवाती !

लक्ष्मी—हाय, मरगई रे ! मार डाला रे !

[चम्पकलाल का प्रवेश]

चम्पक०—क्या है ? क्या है ? क्यों शोर मचाया है ? क्यों तूफ़ान उठाया है ?

चमेली—(रोने का ढोंग करके) हाय रे, मैं मर गई, मैं मर गई ।

चम्पक०—क्या हुआ ? क्या हुआ ?

चमेली—तुम्हारी मां और तुम्हारे बाप दोनों मिलकर मुझे मार रहे हैं, अपने हाथों की खुजली मुझ बिचारी पर उतार रहे हैं, भगवान् ऐसे सास सुसर किसी को न दे । [रोना]

चम्पक०—बड़ा जुल्म, बड़ा अन्धेर, सुसर और बहू को मारे ! (चमेली से) चमेली, तू मत रो । तू रोती है तो मेरा कलेजा टुकड़े २ होता है । (मां बाप से) क्योंजी, तुम दोनों ने मिलकर इसे क्यों सताया ?

भानु०—सब झूठ है। शिर से पैर तक झूठ है। हमारे मत्थे दोष रखने के लिए यह ऐसा कहती है। अपने हाथों से पीट चुकी, अब तेरे हाथों से हमें पिटवाने के लिए रोने का बहाना करती है।

लक्ष्मी—मुझे धक्का देकर जमीन पर गिराया, तेरे बूढ़े बाप ने जब समझाया तो उन्हें भी त्योरी बदल कर धमकाया। मैंने घर का तमाम पानी भरा, पर इसने घड़े को हाथ भी न लगाया। मैंने इतना कहा था कि बुहारी दे ले सो ऐसा दुन्द मचाया कि सारे घर को सर पर उठाया।

चमेली—और अपने गुन नहीं बताती, कि आप भी मुझे पीटा और इस बूढ़े से भी मुझे पिटवाया।

भानु०—झूठ, सब झूठ।

चम्पक०—क्या तुम दोनों सच्चे और यह झूठी? यह बात समझ में नहीं आती।

चमेली—(चम्पकलाल से) मैं तो अब इस घर में नही रहूँगी। मुझे अकेली जानकर यह दोनों मेरा गला घोंट देंगे तो मैं क्या करूंगी। अगर तुम्हें मां बाप में रहना है तो मुझे जवाब देदो और मुझे घरमें रखना है तो मां बाप को घरसे निकाल दो।

चम्पक०—(बाप से) देखो जी, अबतक मैंने तुम से कुछ नहीं कहा। अब तुमने अपना धर्म्म छोड़कर अपने बेटे की बहू पर हाथ उठाया, तो बेटा भी नालायक होकर तुम्हारे सामने आया। हट जाओ मेरे आगे से।

लक्ष्मी–बेटा, एक नाचीज़ औरत के कारण मां बाप से लड़ने को तैयार होता है, क्या मां बाप से ज्यादा औरत को समझता है ? हमने तुझे गोद खिलाया, दूध पिलाया, तेरा मल मूत्र उठाया, उसका बदला आज तूने यह चुकाया कि मारने को चढ़ आया ? ऐसा दूध लजाया ?

चम्पक०–अरी बुढ़िया उस दूध में तेरा क्या ख़र्च हुआ था ? वह तो क़ुदरत का दिया हुआ था।

भानु०–बेटा, ज़रा श्रवणकुमार के मकान पर जाकर देख। सुपुत्र अपने माता पिता की कैसी सेवा करता है और तू किसतरह लड़ता है।

चम्पक०–श्रवण जैसा मैं मूर्ख नहीं हूँ। तुम्हारी सेवा करते २ मैं इतना बड़ा होगया, परन्तु आजतक तुम्हारी तरफ़ से मुझपर गालियों ही की बौछार है। इसलिए चमेली की ख़ातिर करना ही अब मुझे स्वीकार है। तुम्हारी सेवा का फल अन्धकार है, और चमेली की ख़ातिर करने में बस—बहार ही बहार है।

लक्ष्मी–बेटा, माता पिता की सेवा करने से वह फल प्राप्त होता है जो अनेकानेक तीर्थों में स्नान करने से मिलता है।

चम्पक०–मुझे वह फल अब नहीं चाहिए।

[स्वगत] गङ्गा, यमुना, सरस्वती, रामेश्वर, हरद्वार।
सब तीर्थों में श्रेष्ठहै, एक चमेली नार॥

भानु०–हाय, दुनियावाले हमारे घर का झगड़ा देखकर

हंसते हैं। वे यह नहीं जानते हैं कि उनके यहां भी रोज़ यही क़िस्से रहते हैं।

चम्पक०—बस जाओ, मग़ज़मारी छोड़कर घर का काम धंधा करो। बूढ़ी, तू जल्दी से रसोई बना। और बूढ़े, तू मेरे कमरे में जाकर झाड़ू लगा। नहीं जाओगे? नहीं जाओगे? चलो, बस चलो। (धक्का देता है, दोनों जाते हैं)

चमेली—खसोटे मरते भी नहीं। (चम्पकलाल से) आओ मेरे प्यारे प्राणाधार!

चम्पक०—आह! मेरी सरकार!

❀ गाना ❀

चमेली—मेरे प्यारे दिलदार।
चम्पक०—मेरी जीवन आधार॥
चमेली—तुम्हें रक्खूं नैनों में छुपाय के। हां,
चम्पक०—तुझे रक्खूं मैं सरपै चढ़ायके। हां,
चमेली—मेरा हृदय और प्राण तुम्हीं हो।
चम्पक०—मेरी सुगति और शान तुम्हीं हो।
चमेली—शोभा हो तुम, मेरी आभा हो तुम।
चम्पक०—मेरी वसुधा हो तुम, मेरी कान्ता हो तुम।
चमेली—तुम्हें चाहूं मैं सब कुछ गंवाय के। हां,
चम्पक०—तुम्हें पूजूं मैं सर्वस लुटाय के। हां।

[दोनों का जाना]

—०—

तीसरा दृश्य



(महन्त चेतनदास का मन्दिर)

[चेतनदास का प्रवेश]

चेतनदास—सटक, नारायण । सटक, नारायण ।।
जो कोई पेड़ा, लड्डुआ लावे, दूध मलाई हलुआ लावे—
गटक, नारायण । गटक, नारायण ।।
जो कोई जेवर कपड़ा लावे, पैसा, रुपया, मोहर दिखावे—
झटक, नारायण । झटक, नारायण ।।
जो कोई सुन्दर नारी आवे, जोवन की मतवारी आवे—
चटक, नारायण । चटक, नारायण ।।
जो कोई धर्म्म पूछने आवे, वेदशास्त्र की बात सुनावे—
सटक, नारायण । सटक नारायण ।।
बेटा रामजीदास !

[रामजीदास का आना]

रामजी०—जी, जी, जी, जी, जी, जी, गुरूजी महाराज, दण्डवत् ।

चेतन०—सुनले बचा, अब नहीं रहना कच्चा, बड़ा भारी आडम्बर बनाना, ललाट में लंबा तिलक लगाना, कोई सेवक या

सेवकनी आये तो उसे हरिनाम सुनाना, और बातें बना कर उसका सब माल हज़म कर जाना, फिर जगत में मौज उड़ाना। क्योंकि–"गुरू की बातें गुरू ही जाने"। समझ गया बच्चा ?

समझ गया बाबा—

जटा बढ़ा के तिलक चढ़ा के बाबाजी कहलायेंगे।
कान फूंक के, हाथ देख के माल मुफ़्त का खायेंगे॥
गांजा सुलफ़ा, भंग पियेंगे, घर घर अलख जगायेंगे।
दुनिया के भोले जीवों को उल्लू खूब बनायेंगें॥

चेतन०–ठीक और बिल्कुल ठीक, गुरू का गुर और चेले की चाल बराबर मिलगई। देख बचा, अब तुझे घर जाने की ज़रूरत नहीं है। मन्दिर में रह, और मालपुए उड़ा।

रामजी०–जो आज्ञा।

चेतन०–तुझे यह मालूम है कि गुरूजी ने तुझे चेला क्यों बनाया है ?

रामजी०–बेफ़िक्री के साथ मौज उड़ाने के लिए।

चेतन०–हां, और अपना जी बहलाने के लिए। दुनिया के लोग तरह तरह की चीज़ों से अपना जी बहलाते हैं परन्तु हम जैसे गुरू, तुझ सरीखे चतुर और सुन्दर चेले को देख २ कर बलिहारी जाते हैं।

रामजी०–महाराज, आप चेले पर भी बलिहारी जाते हैं

और चेलियों से भी बड़ी जल्दी प्रसन्न होजाते हैं यह दुरंगी हालत क्यों है? आप जैसे गुरू के गेरुए की ऐसी गिरी हुई रंगत क्यों है?

चेतन०—सटक, नारायण! यह पूछकर के तू क्या करेगा। तेरे ऐसे ऐसे प्रश्नों का उत्तर यही है कि 'गुरू की बातें गुरू ही जाने'। गुरू के पास चेलियां आती हैं तो तुझे क्यों बुरा लगता है। सुन—

बन ठन के जो नारि नवेली अपना रूप दिखाती हैं।
स्वामी की सेवा को तजकर मन्दिर में नित आती हैं॥
गुरुओं को भगवान् जानकर मेवा माल खिलाती हैं।
ब्रह्म समझकर हम जैसों को सब कुछ भेंट चढ़ाती हैं॥
क्या जानें वे भोली नारी, हमने जाल बिछाया है।
सती धर्म ग़ारत करने को यह पाखण्ड रचाया है॥

[रामजी दास के पिता बेचरदास का प्रवेश]

बेचर०—(स्वगत) भैया, मेरा रमजिया लड़का कहीं किसी ने देखा है? कोई १५ दिन हुए जब एक लंगोटिए साधू के संग भागगया था। मैं तमाम में ढूंढते २ थक गया परन्तु उसका कहीं पता ही नहीं लगता है। (सामने चेतनदास के पैर दबानेवाले रामजी दास को देख कर) वाह, वाह यह तो वही मेरा रमजिया है (रामजीदास से) चल. मेरे बेटे घर को चल, यहां तू कैसे चला आया?

रामजी०—जाओ, जाओ, हम अब घर को नहीं जायेंगे। मालपुए छोड़कर बाजरे की रोटी अब हम नहीं खायेंगे। महाराज की सेवा त्यागकर, खेत में हल चलाने का काम करने के लिए, अब हम नहीं जायेंगे।

बेचर०—बेटा, ऐसे साधू की संगत में आनन्द नहीं है। 'चार दिना की चांदनी फेर अंधेरी रात'। चार दिन यह तुझे अच्छे २ माल खिलायेगा, फिर तुझपर सोंटे बजायेगा, तुझसे भीख मंगवायेगा, तुझसे चिलमें भरवायेगा। इसलिये मैं तेरा पिता हूं तू मेरे साथ चल, मेरी सेवा करने से तेरा कल्याण हो जायगा।

चेतन०—अरे भगतजी, प्रभू जी का रटन करो, नारायणजी का ध्यान धरो। तुम्हारा यह पुत्र बड़ा भाग्यशाली है जो साधुओं की संगत में आया, महापुरुषों की पंगत में आया। तुम्हारी सातों पीढ़ियां तर गईं।

बेचर०—बैठ, बैठ, लंगोटे, मैं तेरा ज्ञान ध्यान सब कुछ जानता हूँ। संसार को उल्लू बना कर अपना उल्लू सीधा करना ही तुझ जैसे धूर्तों का काम है। साधू तो उसका नाम है जो—

करे साधना योग की, छोड़ के सारे भोग।
वह ही इस संसार में, पांव पूजने योग॥

चेतन०—ए भगतजी, भगत जी तुम तो बड़े अज्ञानी जीव मालूम होते हो—

वेद पुराण का पाठ करो, तुलसी कर कण्ठ धरो बावा।
हरिनाम को सुमरो अष्टप्रहर, मनका सब पाप हरो बावा ॥
जहां सन्त, महन्त, निवास करें, तहां कर सत्संग तरो बावा।
कटुवैन कहो मत साधुओं से, हो जाउगे भस्म डरो बावा ॥

बेचर०—चुप, चुप, बावा के बच्चे, ऐसी गप किसी और को सुनाना। तुझ सरीखे ठगों ने देश का सत्यानाश कर दिया है। मन्दिरों में, तीर्थों में, जहां भक्त लोग बैठ कर भगवान् की आराधना करते थे, वहां तुझ जैसे धूर्तों ने जाकर हिन्दू धर्म का विनाश करदिया है—

अब देश को होने लगी पहचान तुम्हारी।
गद्दी नहीं, यह खुल रही दूकान तुम्हारी ॥

चेतन०—बच्चा रामजीदास, गुरुजी की आज्ञा है कि इस गंवार को दरवाज़े के बाहर निकाल दे। सटक, नारायण।

रामजी०—(बाप से) चलो, निकलो यहां से।

बेचर०—(चेतनदास से) हत तेरा सत्यानाश हो! तूने मेरे पुत्र को बिगाड़दिया! मेरा घर उजाड़दिया! (स्वगत) ऐसे पुत्र से तो मैं निपूता ही अच्छा था—

हैं कहां नेता हमारे? देख लें आंखें पसार।
क्यों नहीं करते हैं ऐसे साधुओं का वे सुधार ॥

[बेचरदास का जाना, चेतनदास का गद्दी पर ध्यानावस्थित होना, रामजीदास का पैर दबाना, चमेली का आना]

चमेली–(स्वगत)

❀ गाना ❀

रंगीली, मैं हूं नारि नवेली,
कैसी मेरी लटक चलूं चटक मटक।
सासू सुसरे से करूं झगड़ा,
बालम लवार और मूर्ख गंवार।
ढूंढत हूं प्रेमी प्यारो, रतनारे नयनावारो।
यहांआई दरसको आई, प्रेमीको अपने भोगयहलाई।
अहा आज मैं खुशी खुशी। (रंगीली)

–०–

(स्वगत) रोज़ सवेरे ही सवेरे स्नान और देव दर्शन का भी कैसा अच्छा बहाना है कि जिसमें न कोई झगड़ा है न कुछ खटका है। बड़े आनन्द के साथ नित्य मुझे मेरे प्यारे महन्त चेतनदास का दर्शन होता है। (सामने देखकर) गुरूजी, पांयलागूँ।

रामजी०[गुरूजी से] महाराज ! चमेली आई । सेवा सामग्री लेके, सोलह शृङ्गार करके, चित्त को चुरानेवाली चञ्चल चमेली आई ।

चेतन०–(आंखें खोलकर) क्या चमेली आई ? (उठकर) सटक, नारायण ।

[चमेली से] चमेली, तेरी बड़ी उम्र है। मैं तुझे याद ही कररहा था। कह, बाबा की भेंट के लिये आज क्या लाई है ?

चमेली०—(भोग की थाली बाबा के आगे रखने के बाद) तन, मन, धन।

रामजी०—तन पति के वास्ते, मन परमेश्वर के वास्ते, और धन सन्तान के वास्ते होता है। बाबा की सेवा के वास्ते क्या लाई है ?

चेतन०—चुप मूर्ख।

चमेली—आज मैं सरकारके भोग के लिये।मोहन भोग लाई हूँ।

रामजी०—तो उस मोहन भोग को गुरूजी भोगिये। आप नहीं भोगें तो मुझे भोगने दीजिए।

चेतन०—तू मानेगा नहीं मूर्ख ? (चमेली से) चमेली, मैं तेरी भक्ति से बहुत प्रसन्न हूँ। शास्त्र में लिखा है कि चाहे स्वामी को त्याग देना, संसार को त्याग देना, परन्तु गुरू की सेवा किसी समय नहीं त्यागना।

रामजी०—हां, क्योंकि 'गुरू की बातें गुरू ही जाने'।

चमेली (गुरूजी से) क्यों महाराज, स्वामी से भी गुरू का दर्जा बड़ा है।

रामजी०—अरे स्वामी क्या, गुरू को तो भगवान् से भी बढ़कर समझना चाहिये, क्योंकि 'गुरू की बातें गुरू ही जाने'।

चेतन०—देख चमेली, दुनियाकी पर्वा मतकर, मन्दिरमें मौजसे रह और गुरूकी सेवा करके अपना लोक और परलोक दोनों सुधार।

चमेली—अभी थोड़ा २ समय ही मैं गुरू की सेवा के लिए देना चाहती हूँ।

चेतन०—अच्छा, तो आज यहीं प्रसादी लेकर जाना। अरे रामजीदास!

रामजी०—जी, जी, जी, जी, जी, जी गुरूजी महाराज।

चेतन०—यह सोहनभोग लेजा और ठाकुरजी का भोग लगा।

रामजी०—जो आज्ञा। (स्वगत) जब कोई चेली आजाती है, तो मैं गुरूजी की आंख में कांटे की तरह खटका करता हूं। यह कर, वह कर, इधर जा, उधर जा के हुक्म जारी हुआ करते हैं। क्या जाने क्या कारण है? 'गुरू की बातें गुरू ही जाने।

[जाना]

❀ गाना ❀

चमेली—मैं तो आई गुरूजी तुम्हारे पास।
गुरु मन्त्र के काज। मेरे रंगीले गुरुराज।
मैं तो हाजिर हूं हरदम भक्तों के उद्धार काज,
देने को गुरु मन्त्र आज।
चमेली—भांति २ की मेवा लाई, सुन्दर मोहन—
भोग मिठाई। स्वीकारिए—महाराज।
चेतन०—ऐसी सेवा गुरु की करना पूर्ण होय सब काज।

(दोनों का जाना)

—०—

रामजी०—[प्रवेश करके] वाह वाह, गुरू की बातें गुरू ही जाने। भाइयो, साधू होने में बड़ा आनन्द है। दुनियावाले सुख चाहते हैं, परन्तु सुख काहे में है यह नहीं जानते हैं। सुख है बेफ़िक्री में और बेफ़िक्री है साधू होने में। न किसी की नौकरी, न किसी की तावेदारी, मुफ़्त का माल खाना, और संसार में स्वामी की पदवी पाना ! कैसा अच्छा है बाना। मैं जैसा था मस्ताना वैसा ही मुझे गुरू भी मिल गया है सयाना। भाइयो, जिसे आनन्द करना है वह मेरी तरह साधू होजाय और मेहनत किये बिना ही टकोरेदार पूरियां, झलमलाती जलेबियां और मेवा भरी गुझियां खा खा कर नरसिंहा बन जाय—

कितनाही मैल भरा मन में, कितनाही दोष अङ्ग में है।
सब को क्षण में ढक लेता है, यह रंग गेरुए रंग में है ॥

❀ गाना ❀

संसार में है सबसे अच्छा साधुओं का वेश।
हां सबसे बढ़िया साधुओं का वेश ॥

घर के जेठ, ससुर से तो परदा करती हैं नारी,
साधू के आगे सरकी है सर की सारी सारी,
है कैसा ख़ासा साधुओं का वेश।

खूनी इस में डाकू इस में गुण्डे इस में रहते,
दुनियावाले हाथ जोड़ कर-स्वामी स्वामी कहते,
है कितना उम्दा साधुओं का वेश ।

हाय,हाय, जो वेश था ईश्वर के भी द्वारा पूजित,
चेतनदास सरीखों ने वह कैसा किया कलंकित,
फिर भी है पुजता साधुओं का वेश ॥

[जाना]

—०—

चौथा दृश्य

(श्रवणकुमार का मकान)

[श्रवण अपने अन्धे माता पिता की आरती कररहा है]

* आरती गान *

मातृ पितृ देवा जय जय मातृ पितृ देवा ।
शक्ति ब्रह्मसम दोनों, शक्ति ब्रह्मसम दोनों ।
स्वीकारो सेवा ॥ जय जय० ॥
अर्च न जानूं वन्द न जानूं जानूं अधिक न पूजा ।
तुम समान त्रिभुवन में, तुम समान त्रिभुवन में ।
समझूं और न दूजा ॥ जयजय० ॥

श्रवण और विद्या-जय, सगुण ब्रह्म स्वरूप माता पिता की जय ।

शान्तवन-धन्य, श्रवण कुमार की सेवा और विद्यादेवी की भक्ति देख कर मेरा हृदय बड़ा आनन्दित होता है। मेरी रग रग, मेरी नस नस और मेरा रुआँ रुआँ प्रफुल्लित होता है। बेटे और बेटी, मेरे आशीर्वाद से तुम दोनों आनन्दित रहो, तुम्हारी सुकृति और तुम्हारा सुयश सूर्य्य चन्द्रमा के समान प्रकाशित हो—

जब तक यह पृथ्वी रहे और रहे आकाश।
तुम दोनों की कीर्ति भी तब तक करे प्रकाश ॥

ज्ञानवती-बेटी विद्या, तेरा चरित्र भी संसार की स्त्रियों के लिए आदर्श है। शुद्ध भाव से सास, ससुर और स्वामी की सेवा करके तूने स्त्री-धर्म को सुशोभित किया है। तेरे सद्गुणों ने हम बूढ़ों को हर्षित ही नहीं, गर्वित किया है। इस संसार में बहुत सी कुलटा स्त्रियां हैं, जो सास ससुर की सेवा नहीं करतीं; स्वामी का वचन नहीं मानतीं। वे निश्चय घोर नरक में जाती हैं और तुझ सरीखी सतियों के आगे देवताओं की स्त्रियां भी लजाती हैं—

वैसे तो संसार में, दुस्तर हैं सब कर्म।
किन्तु कठिनसे भी कठिन है नारी का धर्म ॥

शान्तवन-बेटा श्रवण, गुरू वशिष्ठ से हमारे नेत्रों की औषध लाया ? उन्होंने क्या उपाय बताया ?

श्रवण०—बताया उन्होंने कि उद्धार होगा।
कृपासे जनार्दन की निस्तार होगा॥
कराओ उन्हें पर्यटन तीर्थों का।
तुम्हारा यह बेड़ा तभी पार होगा॥

शान्त्वन—उपाय तो ठीक है, परन्तु पूरा कैसे होगा? हम दोनों वृद्ध, अन्धे कैसे घर से निकल सकेंगे? तीर्थ-यात्रा में क्योंकर चल सकेंगे?

अङ्ग शिथिल हैं, अन्ध दशा है, केश सफ़ेद दिखाय रहे हैं।
बैठते उठते सांस चढ़े है, बहु विधि रोग सताय रहे हैं॥
प्राण पखेरू फंसे पिंजरे में मोक्ष के बोल सुनाय रहे हैं।
तीर्थ के तीर पै जायेंगे केहि विधि, कर और पांव कँपाय रहे हैं॥

श्रवण०—नाथ, आप अगर अन्धे हैं तो क्या चिन्ता है? आप ही के शरीर से मेरा यह शरीर बना है। आप ही की शक्ति का यह दूसरा हिस्सा है। यदि वह शरीर जीर्ण होगया है तो होजाने दो, यह शरीर तो जीर्ण नहीं हुआ है? यह पांव, आप के वास्ते सवारी का काम देंगे। हाथ, रसोइया का काम करेंगे। कान, आज्ञाकारी सेवक की तरह हर वक़्त सेवा में रहेंगे। नेत्र, इशारे पर चलने को तैयार रहेंगे और यह दोनों कंधे आपको तीर्थयात्रा में लेजाने के लिए दो बलवान् घोड़ों का काम देंगे—

हाज़िर है सब शरीर यह सेवा के वास्ते।
बलिदान पुत्र है पिता माता के वास्ते॥

कन्धे पै होगी कांवरी और कांवरी पै आप ।
लेजाऊँगा मैं इस तरह यात्रा के वास्ते ॥

विद्या०—मैं भी झाड़ू दूंगी, पानी भरूंगी, बर्तन माजूँगी, चौका लगाऊंगी, माता पिता से भी ज्यादा अपने सास ससुर की टहल बजाऊंगी । मैं मजूरी करूंगी, बोझा उठाऊंगी, भीख मांग कर लाऊंगी, खुद भूखी रहजाऊंगी परन्तु अपने सास ससुर को रसोई बना बना कर खिलाऊंगी—

दिखलाऊंगी मैं होती हैं बस ऐसी युवतियां ।
सासू ससुर को पूजती हैं ऐसे नारियां ॥
हाथों से अपने धोऊंगी स्वामीकी धोतियां ।
आंखों से रोज़ साफ़ करूंगी मैं जूतियां ॥
यह सास ससुर हैं नहीं मेरी सुगती हैं ।
स्वामी के भी स्वामी हैं पती के भी पती हैं ॥

[विद्यादेवी के भाई नन्दशंकर के साथ चम्पकलाल का प्रवेश]

चम्पक०—(नन्दशंकर से) सुन, सुन, तेरी बहन क्या कह रही है ? अभागिनी मजूरी करते २ मर जायगी । इससे तो यही बेहतर है कि तू इसे यहां से मायके लेजा । अगर मेरी बहन ऐसा दुःख पाती तो अब तक मेरी तरफ़ से बहनोई के खिलाफ़ राज-दर्बार में नालिश भी होजाती ।

नन्द०—(चम्पक से) मुझे भी बहुत गुस्सा आता है । अच्छा किसी तर्कीब से इसको यहां से मायके ही लेजाऊंगा ।

चम्पक०—(नन्द० से) अपनी बहन से यह कह कि तेरी माँ बहुत बीमार है, मुंह देखना हो तो चल ।

नन्द०—(चम्पक० से) पर वह बीमार कहाँ है ?

चम्पक०—(नन्द० से) यह तो हम भी जानते हैं, पर इसे यहां से ले चलने का रास्ता बताते हैं ।

नन्द०—(चम्पक० से) अच्छा ठीक है । (श्रवण० से) अजी श्रवणजी, श्रवणजी नमस्कार ।

(श्रवण और विद्या, शान्तनु और ज्ञानवती की चरण-सेवा में लगे रहने के कारण नहीं सुनते हैं)

चम्पक०—(नन्द० से) वहाँ सुनता ही कौन है ? वह तो सब अपनी धूम धाम में लगे हुए हैं ।

नन्द०—(क्रोधयुक्त) अजी श्रवण जी, ए श्रवण जी, क्या अन्धे हो ? बहरे हो ? गूंगे हो ? हम कितनी देर से खड़े हैं हमें कोई देखता नहीं ! हमारी कोई सुनता नहीं !! हम से कोई बोलता नहीं !!!

श्रवण०—ओहो हो हो, नन्दशंकर जी और चम्पकलाल जी। आइए, आइए। कैसे पधारे? क्या आज्ञा है?

नन्द०—आगे आओ, कुछ तुम से कहना है। हम तुम्हारे परदेश से आये हुए महमान, और तुम हमारी बात भी नहीं पूछते इतना अपमान? माता पिता कहीं भाग थोड़े ही जायेंगे। पहले हमसे बात कर लो, पीछे उनकी सेवा करना।

श्रवण०—नन्दशङ्कर जी, नन्दशङ्कर जी, माता पिता की सेवा पहले है और सब काम पीछे हैं:—

कोई चाहे धन माल को, कोई चाहे सुख साज।
कोई चाहे संसार में, तीन लोक का राज॥
योगी चाहे मोक्ष को, मानी चाहे मान।
श्रवण दास के हृदय में, मात पिता का ध्यान॥

❁ गाना ❁

अगर इस खाल के जूते बनें तो खाल हाज़िर है।
अगर इस आंखका सुरमा बने तो आंख हाज़िर है॥

मेरी रग रग मेरी नस नस ह सभी बलिहार इन पर है ।
पिता माता की सेवा में मेरा जीवन निछावर है ॥
मैं इनका धर्म बालक और यह धर्मात्मा मेरे ।
मैं इनकी आत्मा हूँ और यह परमात्मा मेरे ॥



नन्द०—धन्य महामहोपदेशक जी, धन्य । तुम्हें धन्य और तुम्हारे इस पाखण्ड को धन्य । यह तुम्हारे सब कुछ हैं और हम तुम्हारे कोई नहीं ? क्या हम तुम्हारे साले और तुम हमारे बह-नोई नहीं ?

श्रवण०—सुनो नन्दशङ्कर जी । एक धनवान् पुरुष सौ स्त्रियों के साथ विवाह करना चाहे तो सौ स्त्रियां मिल सकती हैं । और एक एक स्त्री के चार चार भाई हों तो चार सौ साले भी मिल सकते हैं । परन्तु नवखण्ड में, सप्तद्वीप में, तीनों लोक में, चौदहों भुवनमें, असंख्य और अनन्त धन खर्च करने पर भी

जन्मदाता पिता और माता दूसरे नहीं मिलेंगे, नहीं मिलेंगे–

जन्म जन्मान्तर हो भक्ति पिता माता की ।

भेंट हो जन्म तो सेवा में जन्मदाता की ॥

नन्द—बस, बस, रहने दीजिए, आप अपने सौ व्याह कीजिए चाहे दो सौ व्याह कीजिए (विद्या से) चल बहन विद्या, तू इस घरको छोड़ दे । हमें भी देखना है कि यह कितने व्याह करेंगे । उठ ! चल !!

चम्पक०—हाँ, चल, तेरी माँ बहुत बीमार है ।

विद्या०—(नन्द से) भाई, मैं क्षमा चाहती हूं, अपने सास ससुर की सेवा को त्याग कर, अपने स्वामी का अपमान करा-कर मैं नहीं जा सकती हूं ।

नन्द—क्या यहाँ तुझे किसी ने बांध रक्खा है ?

विद्या०—चाँदनी को क्या चन्द्रमा ने बांध रक्खा है ? धूप को क्या सूर्य्य ने बांध रक्खा है ? भाई, दामिनी की शोभा जिस प्रकार बादलों में है उसी प्रकार भामिनी की शोभा स्वामी के चरणों में है:—

पति ही व्रत, पति ही सुगति, पति ही प्राणाधार।
पति ही की सेवा सदा, है मुक्ती का द्वार॥

चम्पक०—(नन्द से) निःसन्देह तेरी बहन बड़ी मूर्खा है। इसकी सास इसे रोज गालियां देती है और यह उसी सास पर मरी मिटती है। इसका पति इससे चक्की पिसवाता है फिर भी यह उसी को अपना सर्वस्व समझती है।

नन्द०—(विद्या से) विद्या, यह बूढ़ी सास तुझे गालियां दिया करती है और तू सुन लिया करती है?

विद्या०—भाई, मेरी सास का अपमान न करो। मेरी सास तो साक्षात् पार्वती का अवतार हैं। मुझ पर यह प्राणों से भी ज्यादा प्यार करती हैं, अपने पुत्र से भी बढ़कर मेरा सत्कार करती हैं। इन्होंने आज तक मुझे क्या, किसी को भी गालियां नहीं दीं। किसीसे भी बुरे बचन नहीं बोलीं। और अगर यह मुझे गालियां देतीं भी तो क्या डर था? मुझे मार भी लेतीं तो क्या अनुचित था? यह मेरी सास हैं। इनकी गालियाँ तो मेरे लिए आशीर्वाद हैं—

गालियाँ नहीं, गोलियां हैं वह, जो रोगी को दी जाती हैं।
खाने में कड़वी लगती हैं, पर सारा रोग मिटाती हैं॥

नन्द०—(विद्या से) खूब बहकाया है! खूब रंग चढ़ाया है!!

अच्छा अब देर मतकर, तेरी मां बीमार है इस कारण यहां से एक दम चल।

विद्या०—बिना सास ससुर और स्वामी की आज्ञा के नहीं जा सकती हूँ। स्त्री की जाति कभी स्ववश नहीं—

बालकपन में नारि का, मात पिता के वास।
युवती होकर रहे वह, निज स्वामी के पास॥
वृद्धावस्था में रहे, शिशु-सेवा में लीन।
इन्हीं बंधनों में बंधी, नारि नहीं स्वाधीन॥

नन्द०—ठीक। (श्रवण से) श्रवणजी, हम विद्या को यहाँ से लेजाना चाहते हैं। इसकी माता बहुत बीमार है, मृत्यु-शय्या पर पड़ी है, इसलिये हम इसे लिवाने को आये हैं।

श्रवण०—नन्दशङ्कर जी, आपकी माता मरण शय्या पर पड़ी हैं तो आप उनकी सेवा छोड़कर यहाँ कैसे चले आये? किसी आदमी को भेजदेते, या कोई पत्र मुझे लिख देते तो मैं स्वयम् तुम्हारी बहन को वहां पहुंचा आता। तुम्हें अपनी माता की सेवा ऐसी अवस्था में नहीं छोड़नी थी, उनकी चिकित्सा करनी थी।

नन्द०—सेवा और चिकित्सा करने का काम हमारा नहीं है, जिनका यह काम हैं वे कर रहे हैं। हम ऐसी मग़ज़मारी में क्यों पड़ें?

श्रवण०—यह मग़ज़मारी है? हरे हरे, तुम्हारी मति किसने

मारी है ? जो पुत्र अपनी माता और अपने पिता की सेवा नहीं करता है वह रौरव नरक का अधिकारी है—

माता को देखो बेटे पर वह कैसा लाड़ लड़ाती है ।
नव मास गर्भ में रखती है और अपना दूध पिलाती है ॥
ख़ुद तो सोती है गीले में सूखे पर उसे सुलाती है ।
मलमूत्र सदा धोती उसका बलिहारी उस पर जाती है ॥
ऐसी माता को त्यागे, जो वह पुत्र नरक का गामी है ।
वह पुत्र कुपुत्र कहाता है वह पुत्र ही दूध हरामी है ॥

चम्पक०—स्वारथ चाहे सब कोई, इसमें क्या उपकार ।
धर्म्म है यह मां बाप का, करे पुत्र से प्यार ॥

श्रवण०—और पुत्र का कुछ धर्म्म नहीं है ? सारा संसार पुत्र की लालसा रखता है, किसलिये ? इसीलिए तो कि बुढ़ापे में वह हमारी सेवा करे और मरने के बाद हमारा नाम चलाये पर आज उसके विपरीत होरहा है, हाय—

नव मास उदर में जिस माता के रहा था ।
जिस की छाती का तूने दूध पिया था ॥
अब बड़ा हुआ तो त्याग रहा है उसको—
इस से, तू पत्थर होता तो अच्छा था ॥

शान्तन—सत्य है बेटा—

सेवक सौ भी हों य तो, जाय नहीं सन्ताप ।
कुलदीपक एक पुत्र से, सुख पायें मां बाप ॥
पुत्र ही करता है सदा, सेवा और सन्मान ।
मरजाने पर, पुत्र ही, देता है जलदान ॥

ज्ञान०—इस विवाद में क्या रक्खा है। वेटी विद्यादेवी, मैं तुझे आज्ञा देती हूँ। तेरी माता यदि बीमार है तो जा, उस से मिल आ।

विद्या०—माताजी की जैसी आज्ञा।

नन्द०—(विद्या से) अच्छा अब तो आज्ञा मिलगई ? अब चलने की तैयारी करो। हम और चम्पकलाल सवारी का प्रबन्ध करने के लिए जाते हैं।

[दोनों का प्रस्थान]

विद्या०—(श्रवण से) स्वामी, आज्ञा चाहती हूँ। आपकी सेवा छोड़ने को जी नहीं चाहता, परन्तु माता जी की बीमारी के कारण लाचार होकर जाना चाहती हूँ।

श्रवण०—जाओ प्रिये, मैं प्रेम-पूर्वक आज्ञा देता हूँ। तुम्हारी माता भी मेरी माता के समान हैं। इनकी और उनकी दोनों की सेवा करने ही में हमारा और तुम्हारा दोनों का कल्याण है।

❀ गाना ❀

विद्या०—प्रीतम प्राण, दासी तुम्हारी यह,
आज्ञा जाने की चाहे ।
श्रवण०—सती गुणवन्ती-रानी रूपवन्ती ।
विद्या०—चिन्तवन तुम्हारा प्राणनाथ है ।
श्रवण०—मेरी तुम्हारी अब रक्षा करें हरि,
जाओ न कुछ घबराओ ।
विद्या०—मन है अब ठाकुरद्वारा,
पूजूंगी यह सुख प्यारा ।
श्रवण०—शान्ति अमृत की धारा,
चितसे मैं करूं न न्यारा ॥

—०—

 पांचवां दृश्य

नन्दशंकर का मकान ।

[नन्दशंकर की स्त्री बिजली का अपनी सखियों के साथ प्रवेश]

❀ गाना ❀

बिजली तथा सखियां—

जगमें उजियारा करती क्या चपल बीजुरी आई ।
चले ठुमकचाल, लचकाती, नयनोंकी सैन चलाती ॥

फूलरही जोबन फुलवारी, मदन कमान चढ़ावै ।
अधरन से अमृत रस टपके, पीवत भ्रमर लुभावे ॥
कर सोलह शृंगार सखी ने सुन्दर सेज संवारी ।
चन्द्र उगो पर नाथ न आये, बीती रजनी सारी ॥

बिजली—

चटकचटकचटकाराकरतीचकाचौंधसेचितको हरती ।
क्षणमें लुपती और चमकती, चपल बीजुरी आई ॥
देखो चपल बीजुरी आई० ॥

रसिका नाम्नी एक सखी—आली, अपनी सखी बिजली की चटकमटक तो देखो, (बिजली से) बिजली, तुम जैसी चतुर हो वैसा तुम्हारा पति नन्दशङ्कर नहीं है ।

बिजली—क्यों नहीं हैं ? वे तो सर्वगुणसम्पन्न हैं । मुझे तो वह बहुत ही प्यारे हैं । भला रसिका तुम्हें अपना पति प्यारा लगता है या नहीं ?

मालती नाम्नी दूसरी सखी—अरे हां हाँ, इसका छोटा सा बलमा इसे बहुत प्यारा लगता है ।

ललिता नाम्नी तीसरी सखी—उँ हूँ हूँ हूँ । तुम सब को क्या होगया ! सारे दिन तुम सब अपने पतियों ही की बातें किया करती हो । वह कहती है मेरा रसिया, यह कहती है मेरा मोहन तू कहती है मेरा बालम, मेरा प्रीतम । मुझे यह बातें पसन्द नहीं ।

मालती—लल्ली अभी तूने देखा ही क्या है ! अभी तो तू

नन्ही है, बचकन्नी है। जब बड़ी होगी तो तू भी हमारी तरह अपने मनमोहन रसिया की बातें करेगी।

बिजली–अरी इसे नन्ही न कहो, यह बड़ों बड़ों के कान काटती है। अपने मनका भाव छुपाके दूसरे के दिल की बात को जानना चाहती है। पन्द्रहवें वर्ष में पांव रखदिया है और अभी तक तुम इसे बचकन्नी ही समझती हो? जरा इसके मुखड़े को तो देखो—

फूल फूले हैं चमन में, है बहार आई हुई।
सब पता बतला रहीं है, आंख शरमाई हुई॥

रसिका–हैं,हैं, ऐसी खुली खुली शृङ्गार रस की बातें! कोई सुन लेगा तो नाम धरेगा।

बिजली–सुन कौन लेगा?

ललिता–अजी ऐसी बातें सुनने के लिए तो मकान के भी कान हो जाते हैं।

बिजली—
पिया विदेश सास घर नाहीं मैं इस समय अकेली।
सूने घर में किस का भय है, खेलो खेल सहेली॥

मालती–तुम्हारी सास आज घर क्यों नहीं है?

बिजली–मन्दिर में दर्शन करने गई हैं?

रसिका–और वह?

बिजली–वह अपनी बहन विद्यादेवी को बुलाने गये हैं।

ललिता—वह ! वह !! वह !!! वह कौन ? उनका नाम क्या ?

बिजली—वही मेरे मनमोहन रसिया, मेरे प्राणनाथ, मेरे स्वामी ।

ललिता—उनका नाम तो बताओ ?

बिजली—रहने दो सखी, ऐसी छेड़ रहने दो । अपने मुख से अपने स्वामी का नाम नहीं लिया जाता ।

ललिता—क्यों नहीं लिया जाता ! जब सबका नाम लिया जाता है तो अपने स्वामी का नाम लेने में क्या दोष है ? तुम सभी अपने २ स्वामी का नाम लो । जो अपने स्वामी का नाम न ले उसे अपनी सास की सौगन्द ।

रसिका—तो स्वामी का नाम लेने में पाप ही क्या है ? लो मैं अपने स्वामी का नाम लेती हूँ ।

मालती—ले, तू जब अपने स्वामी का नाम लेलेगी तो हम सब भी अपने २ प्रीतम का नाम बतादेंगी ।

रसिका—अच्छा तो सुनो :—

सुन्दर जिसके नेत्र हैं सुन्दर जिसके बाल ।
ऐसा स्वामी है मेरा, सुन्दर, सुन्दरलाल ॥

ललिता—हाँ मालती अब तुम बताओ ।

मालती—मोहन जिसके बैन हैं, मोहन जिसकी चाल ।
ऐसा बालम है मेरा, मोहन, मोहनलाल ॥

ललिता—हां सखी बिजली, अब तुम भी कहडालो ।

बिजली—सुन्दर भी है, मोहन भी है, सदा मुझे सुखकर है।
भोला भाला स्वामी मेरा नाम नन्द.........॥

सब—शंकर है।

ललिता—भला तुम सबने क्यों नाम लिया? (बिजली से) सुन बिजली, मैं तुझसे एक बात पूछती हूँ—

नई बहू का अपने घर में कितना होता है अधिकार?
सास ननद देवरानी, जिठानी कैसा करती हैं व्यवहार?

बिजली—जब तेरा व्याह होगा तो तू सब जान जायगी।

रसिका—रानी सी है यहां, सासरे में दासी होलेगी।
काम बिगाड़ेगी कुछ तो जेठानी ताने देगी॥
तुझे चिढ़ाने की खातिर दोरानी हंसी करेगी।
दिया जवाब किसीको तूने तो ननदी पीटेगी॥
(ललिता की पीठ पर हाथ मारती है)

ललिता—देवरानी, जेठानी की मैं परवा नहीं करूंगी।
ननदी मुझको पीटेगी तो मैं उसको पीटूंगी॥
(रसिका की पीठ पर हाथ मारती है)

मालती—आसन बासन तोड़ूं फोड़ूं, सारा काम बिगाड़ूं।
सास मुझे जो आंख दिखावे मूसल लेकर मारूं॥

रसिका—तू ऐसी बहादुर है? तब तो तेरा व्याह जल्दी हो जाना चाहिए।

ललिता—मुझे व्याह की बड़ी उमङ्ग है, पर कोई मेरा व्याह करता ही नहीं।

मालती–ब्याह तो अभी होजाय, तेरे ब्याह की बात तेरे माता पिता के ख़याल में आज ही आजाय ।

ललिता–उपाय ?

बिजली–उपाय यह कि तू रोज़ सखियों के साथ शृङ्गार करके स्वाँग रचाया कर, और जैसे हम बतायें वैसे गीत गाया कर ।

ललिता–अच्छी बात है, वह गीत बताओ ।

बिजली–सुन ।

❀ गाना ❀

अररररर, माईरी, बीछू ने चटखायो,
मां बीछू ने । मरे, पीटे बीछू ने ।
अररररर, माईरी, नयनन जल भर आयो,
मां बीछू ने । मरे, पीटे बीछू ने ।
अररररर, माईरी, बगीचे खेलने गई थी,
मां बीछू ने । मरे पीटे बीछू ने ।
अररररर, माईरी, घोर घटा तब छई थी,
मां बीछू ने । मरे, पीटे बीछू ने ।
अररररर, माईरी, ज़हर चढ़ो ही जाय,
मां बीछू ने । मरे, पीटे बीछू ने ।
अररररर, माईरी, सगरो तन अकुलाय,
मां बीछू ने । मरे, पीटे बीछू ने ।

–०–

(सब का जाना)

छठा दृश्य



चम्पकलाल का मकान ।

(चम्पकलाल की माता लक्ष्मी, देवपूजन करके, अब आरती कररही है)

लक्ष्मी—

पारब्रह्म, परमेश, कृपानिधि, जगन्नाथ, दातार, हरे ।
कमलनयन, कमलापति, केशव, कोमल, करुणागार हरे ॥
नटवर, नागर, सब गुण-आगर, निराकार साकार हरे ।
विश्वम्भर, गरुडध्वज, माधव, जगपति, जगदाधार हरे ॥

(आरती रखकर)

हे प्रभु, हे भगवान्, मेरे चम्पकलाल की बुद्धि निर्मल करो । उसे सुमति दो, उसे सम्पत्ति दो ।

(चम्पकलाल का प्रवेश)

चम्पक०—हैं, यह कैसा पाखण्ड कर रही है ! पाषाण की मूर्त्ति का अर्चन बन्दन करके अब उससे मेरी बुद्धि विमल करने की प्रार्थना कर रही है ? मेरी बुद्धि कैसी है ? क्या मलीन है ? अगर मेरी बुद्धि मलीन है तो संसार में किसी की भी बुद्धि उज्ज्वल नहीं है :—

मिथ्या स्वाँग बनाकर, सारे दिन तूफ़ान उठाती है ।
धूप, दीप नैवेद्य, दिखाकर, कैसा ढोंग रचाती है ॥

यह पाषाणमूर्त्ति, बुद्धी को भी पाषाण बनाती है।
जैसी यह है, वैसा ही भक्तों को क़र दिखलाती है॥

लक्ष्मी—अरे रे रे बेटा, नारायण की मूर्ति का ऐसे शब्दों में बखान न कर! और सुन तो सही, मेरी पूजा की कोठरी में, मेरे भगवान् के सामने जूते पहने कैसे चला आया? जूतों को बाहर उतार आ, मेरे बेटे!

चम्पक०—अगर तू जूतों को अपवित्र समझती है तो मेरे शरीर से इन जूतों का सम्बन्ध होने के कारण मेरा यह शरीर अपवित्र है, और इस शरीर से तेरे शरीर का नाता होने के कारण तेरा शरीर भी अपवित्र है।

लक्ष्मी—चल यह क़ानूनी बातें रहने दे। कोई किसी राजा के यहां जाता है तो उसे कितना शिष्टाचार करना पड़ता है, और यहां तो साक्षात् त्रिलोकी के राजा विराजमान हैं।

चम्पक०—मैं यह कुछ मानने को तैयार नहीं हूँ। चल और चलकर मुझे रसोई परोस (लक्ष्मी का हाथ पकड़ता है)

लक्ष्मी—अरे रे रे, यह तूने क्या किया? बाज़ार के कपड़ों से मुझे छू लिया? अब मुझे फिर न्हाना पड़ेगा।

चम्पक०—क्यों?

लक्ष्मी—अभी ठाकुरजी को रसोई का भोग कहां लगाने पाई हूँ।

चम्पक०—तो मैं क्या कोई भंगी हूँ या चमार हूँ जो मेरे

छूने से तुझे फिर स्नान करना पड़ेगा ? इन बुढ़ियों में कहां का पाखण्ड आगया है ? चल, उठ, भोग वोग फिर लगाना पहले मुझे थाली परोस दे ।

लक्ष्मी—बेटा, दिक़ मत किया कर । ज़रा ठहर जा फिर स्नान किये आती हूँ । ठाकुरजी का भोग लगाकर अभी रसोई खिलाती हूँ । तब तक तू भी स्नान कर ले, एक दो गायत्री की माला जप ले, सन्ध्या—वन्दन करले ।

चम्पक०—उसके करने से क्या होगा ? वह सब बेकार है ।

लक्ष्मी—नहीं बेटा यह कर्म्म धर्म्म—शास्त्र के अनुसार है । द्विज जाति में जन्म लेकर जो स्नान और सन्ध्या—वंदन नहीं करता है वह पतित समझा जाता है:—

स्नान के करने से बेटा, सब तन की शुद्धी होती है ।
सन्ध्या—वंदन के करने से बस, निर्म्मल, बुद्धी होती है ॥
जिसने शारीरिक शुद्धी की, उसको नहीं रोग सताता है ।
जो शुद्ध आत्मा होता है, वह परमात्मा को पाता है ॥

चम्पक०—मैं ऐसे गपोड़े सुनने को तैयार नहीं । स्नान से शुद्धि होजाया करती तो कितने ही मगर मच्छ जो सदैव जल में ही पड़े रहते हैं, क्यों नहीं शुद्ध कहलाते ? और आंखें मूंदने से परमात्मा दिखाई पड़ता तो कितने ही बगुले जो रोज़ जल के किनारे ध्यान लगाया करते हैं, क्यों नहीं ब्रह्मरूप होजाते—

पहले कर पुनर्जन्म साबित, तब कर्म बताना आत्मा का।
सन्ध्या-वन्दन तब होगा जब अस्तित्व मिले परमात्मा का ॥

लक्ष्मी-हाय, हाय, मेरा बेटा तो नास्तिकों कीसी बातें करता है।

चम्पक०-हां, तेरा बेटा-नास्तिक है और घोर नास्तिक है। चल, अब यह पाखण्ड छोड़दे और मुझे रसोई खिला, नहीं तो बुरी तरह पेश आऊंगा।

(धक्का देता है, भानुशंकर आता है)

भानु०-(स्वगत) कुपूत बाजार से घर में आ गया है, बूढ़ी को मार रहा है, अब कुशल नहीं। हे भगवान्! क्या करूं ?

चम्पक०-(लक्ष्मी के हाथ से ठाकुर पूजा की घंटी छीनकर और फेंक कर) अब चलती है या नहीं ? सब पूजा ऊजा तेरी नष्ट कर दूंगा (बाप से) क्योंजी तुम घर के बड़े बूढ़े होकर बैठे २ क्या मक्खियाँ मारा करते हो ? उस चारपाई के बान टूटे पड़े हैं उसको बुनने में क्या तुम्हारे हाथ टूटते हैं ?

भानु०-जब तू बूढ़ा होगा तो तेरे हाथ तेरे इस प्रश्न का उत्तर देंगे। इस समय तो तू मुझे क्षमाकर, मैं भूलगया था आज जरूर चारपाई बुन दूंगा।

चम्पक०-तुम दोनों ने मिलकर मेरा सत्यानाश कर दिया।

बहू कहां है ? क्या उसको तुम दोनों ने मार मार कर घर से तो नहीं निकाल दिया ?

लक्ष्मी—वह तो सवेरे ही से दर्शन करने के बहाने गई हुई है, अभीतक नहीं आई है।

[चमेली का प्रवेश]

चमेली—हैं! हैं!! बुढ़िया क्या कह रही है ? मैं तो कहीं भी नहीं गई थी, अपने कमरे में सोरही थी। देखो तो चुड़ैल की बातें, मुझे तोहमत लगाती है। (चम्पकलाल से) तुम्हारी सौगन्द मुझ भोली भाली को यह रोज़ इसीतरह सताती है। मैं तो अब अफ़ीम खाके मरजाऊंगी या कुंए में जाके डूब जाऊंगी।

चम्पक०—मत घबरा, मत घबरा। चाहे सारा संसार तुझ पै कलङ्क लगाये तो भी मैं सच नहीं मानूंगा। मैं जानता हूं कि मेरी बहू नेक है, हज़ारों में एक है। भगवान् हम जैसे नेक आदमी को ऐसी ही नेक औरत दे।

चमेली—स्वामी, आज मैं मुंह खोलके, सबके सामने, डंके की चोट कहती हूं, कि मेरा अब इन बुड्ढे बुढ़ियों के साथ एक घर में गुज़ारा नहीं होगा। मेरी तो ज़िन्दगी ही तबतक ज़िन्दगी नहीं रहेगी जब तक इन दोनों से मेरा किनारा नहीं होगा।

चम्पक०—मैं भी यही सोचता हूँ।

भानु०—हैं! तू भी यही सोचता है ? भगवन्, आज यह कैसा अनर्थ होरहा है !

चम्पक०—हां, अब अनर्थ ही होगा। जाओ, तुम दोनों इस घर से निकल जाओ।

भानु०—किस अपराध पर, किस खता पर?

चम्पक०—हमारी इच्छा पर, हमारी आज्ञा पर। रोज़ तुम्हें मैं दूध रबड़ी खिलाता था, इसलिए कि मेरी स्त्री को सताओ? हर साल मैं तुम्हें दो दो धोतियां और चार चार कुरते पहनाता था, इसलिए कि मेरी इस भोली भाली की जान पर आरे चलाओ? बस, निकल जाओ, एक दम यहां से निकल जाओ।

लक्ष्मी—बेटा हम कहां जाँय? (घर की तरफ़ इशारा करके) हमारा एक मकान तो यह है, और (चम्पकलाल की तरफ़ इशारा करके) दूसरा मकान तू है। इन दोनों मकानों को छोड़कर हम कहां जाँय?

चमेली—चूल्हे में, भट्टी में—

चम्पक०—भाड़ में, जहन्नुम में, जहां जी चाहे वहां जाओ।

भानु०—बेटा ऐसा जुल्म मत करो। देखो हमारे पास जो उम्र भर की कमाई थी सो सब तुम लेचुके। अब हमारे पास एक पाई भी नहीं है, कैसे गुज़र करेंगे?

चम्पक०—भीख मांगो, भीख। नहीं तो मज़दूरी करो, बोझा लादो, चक्की पीसो, घास खोदो।

लक्ष्मी–बेटा, अब हमारा बुढ़ापा है। इस बुढ़ापे में हम कहाँ धक्के खाने जायेंगे। हम तेरी धोतियां धोयेंगे, झूठन उठायेंगे, बुहारी देंगे, बरतन माजेंगे, तेरी गालियाँ खायेंगे, तू जैसा रूखा सूखा टुकड़ा देगा उसीपर सन्तोष करके तेरी चाकरी बजायेंगे, परन्तु तुझे छोड़के नहीं जायेंगे। मेरे लाल! मेरे मुन्ने!! तू मेरा इकलौता बेटा है। मैंने तुझे बड़े लाड़ से पाला पोसा है।

चमेली–(लक्ष्मी से) बेशर्म, अपने बेटे के सामने इस तरह गिड़गिड़ाती है तुझे शर्म नहीं आती है?

लक्ष्मी–बेटी, तू इस भाव को क्या जाने—

तेरी कोख तुझे बतलाती, जो तू पुत्र की दाता होती।
पुत्र कुपुत्र तो होजाता है, माता नहीं कुमाता होती॥

चम्पक०–जा, जा, तेरा यह ढोंग अब तेरा बेटा नहीं देखना चाहता है। (स्वगत) जिस पर स्त्री का रंग चढ़ चुका हो उसपर माता का रंग कहीं चढ़ता है?—

माता, पैदा करनेवाली और सिर्फ़ पालनेवाली है।
लेकिन औरत जीवन भरतक तबियत ख़ुश करनेवाली है॥

भानु०–हाय, सूर्य और चन्द्रमा में अब देखने की शक्ति नहीं है। आकाश और पृथ्वी लाचारी का बाना पहने हुए हैं। सारा संसार हमारे लिए स्याह हुआ। हम तबाह हुए और हमारा घर भी तबाह हुआ—

जाने के पहले देते हैं आशीर्वाद हम ।
जाकर भी दिलमें रक्खेंगे बेटे की याद हम॥
चिन्ता के दुख के कष्ट के हम फंद में रहे ।
तू खुश रहे, जीता रहे, आनन्द में रहे ॥

लक्ष्मी–हमारे साथ पानी पीने को एक लोटा भी तो नहीं है। कोई टूटा फूटा लोटा तो दे दे ।

चम्पक०–लोटा ओटा कुछ नहीं है, हाथों से पानी पीना ।

भानु०–अच्छा, हम पानी हाथों से पीलेंगे, परन्तु...बेटा...

चंपक०–कहो, कहो, क्या कहते हो ?

भानु०–इस बूढ़े ब्राह्मण के पास, स्नान करने के लिए दूसरी धोती नहीं है। कोई फटी पुरानी धोती हो तो दे दे ।

चम्पक०–धोती की क्या ज़ुरूरत है ? तुम जो धोती पहने हुए हो उसी को फाड़ो और उसकी लंगोटियां बना बना कर अपना काम चलाओ ।

भानु०–यही मेरा बेटा है ? आकाश के सितारो ! जवाब दो, यही मेरा बेटा है ?

लक्ष्मी–(भानु० से) मत मांगो, कुछ मत मांगो, हम कुछ मांगते हैं तो बेटे के चित्त को दुःख होता है—

पसीना देखकर जिसका मेरे आंसू निकलते हैं ।
उसे क्या इसतरह तकलीफ़ देकर आप चलते हैं ॥

[चम्पक० से] न लोटा दे, न धोती दे मगर इतना तो दे बेटा।
तू यह कहदे मेरी माता, मैं यह कहदूं मेरे बेटा ॥

❀ गाना ❀

चम्पक०—जाओ टरके, कहीं मरके पल भर में
तुम निकलो दोनों घरसे बाहर।
चम्पक और चमेली—अब हटो, चलो, टलो, जलो,
निकलो, घर से, मुंह काला कर के
यहां से जाओ।
भानु० और लक्ष्मी—जाते हैं जाते हैं तुम खुशी रहो
फलो और फूलो नित सुखी रहो ॥
चम्पक०—छोड़ दो लबारी, करो जाने की तयारी,
है हमारी आज्ञा जाओ जाओ निकलो
दोनों घर से बाहर।



[भानु० और लक्ष्मी को, चम्पक और चमेली
धक्का देकर घर से निकाल देते हैं]

—०—

सातवां दृश्य

श्रवणकुमार का मकान ।

[श्रवण के माता पिता झूलेपर बैठे हुए हैं । श्रवण उनकी सेवा में लीन है ग्राम की स्त्रियां श्रवणकुमार की तीर्थयात्रा पर खुशी मनाने के लिए गीत गा रही हैं]

गाना

स्त्रियां—

स्नेहसे सलोनी सजनी हिलमिलके साजो शुभसाज ।
श्रवणकुमार माता पिता को ले साथ, हां जाते हैं
यात्रा करने को, आशिष देवें सब उनको । सुफल
होवें सब काज ॥ स्नेह से० ॥
सुन्दर, उत्तम दिन पाया, मोतिन से चौक पुराया ।
घर घर में आनन्द छाया आज ॥ स्नेह से० ॥

पहली स्त्री—करो यशार्जन श्रवणकुमार,
सदा तुम्हारे हों जयकार ।
(हार पहनाती है)

दूसरी स्त्री—सुफल यात्रा होय तुम्हारी,
रक्षा करें उमा त्रिपुरारी ।
(नारियल देती है)

तीसरी स्त्री—(पुष्प वर्षाकर)—

सदा भवानी दाहिनी, सन्मुख रहें गणेश।
पांच देव रक्षा करें, ब्रह्मा, विष्णु, महेश॥

(राजा दशरथ के सचिव का आना)

सचिव—गो-ब्राह्मण प्रतिपालक, राज–राजेन्द्र श्रीदशरथ महाराज की जय हो।

(वशिष्ठ, दशरथ आदि का प्रवेश)

दशरथ—श्रीयुक्त शान्त्वन देव, दशरथ आपसे भेंट करने के लिए उपस्थित है।

शान्त्वन—जय हो राज राजेन्द्र, पधारिए।

दशरथ—शान्त्वनजी, गुरू वशिष्ठ भी आपसे भेंट करने आये हैं।

शान्त्वन—अहो भाग्य। महर्षि वशिष्ठ और राजेन्द्र दशरथ दोनों आये हैं। आज का दिन धन्य है, यह स्थान धन्य है जो ग़रीब के यहाँ ग़रीबनिवाज़ तशरीफ़ लाये हैं।

दशरथ—निःसन्देह आज का दिन धन्य है, हमारा भाग्य धन्य है जो आपके दर्शन पाये हैं।

वशिष्ठ—

बड़भागी भारतवर्ष है यह, और धन्य यह पुरी अयोध्या है।
जिस जगह पिता है शान्त्वनसा, और श्रवण कुंवर सा बेटा है॥

दशरथ—सत्य है देवताओं में शंकर को देखा, नदियों में गङ्गा को देखा, पर्वतों में कैलास को देखा, पुष्पों में कमल को देखा और सुपुत्र पुत्रों में एक श्रवण को देखा। श्रवणकुमार, आनन्दपूर्वक आप अपने अंधे और वृद्ध माता पिता को अनेकानेक तीर्थों की यात्रा कराइये। पालकी, रथ, हाथी, घोड़े, सिपाही, प्यादे और यात्रा में ख़र्च करने के वास्ते रुपये, मोहर आदि जिस चीज़ की आवश्यकता हो मेरे राजभण्डार से लीजिए। मैं यह सब वस्तुएं बड़ी श्रद्धा के साथ आपकी भेंट करता हूँ। इन्हें स्वीकार करके मुझे कृतार्थ कीजिए।

श्रवण०—राजेन्द्र, माता पिता की सेवा के वास्ते मेरे भुजदण्ड ही हाथी हैं, मेरे हाथ ही सिपाही हैं, हृदय रथ, कंधा पालकी, दोनों नेत्र घोड़े, तथा रोम रोम प्यादे हैं। प्रेम रूपी रुपया और श्रद्धा रूपी मोहर मेरे साथ है। माता पिता की सेवा ही मेरेलिए राज साज है।

वशिष्ठ—श्रवणकुमार, दशरथराज ठीक कह रहे हैं। तुम जैसे कोमल सुकुमारों से कांवरी उठाने का कार्य होना असम्भव है—

परिश्रम जब बहुत होगा, तो हिम्मत टूट जायेगी।
शिथिल जब अङ्ग होवेंगे, तो कांवर छूट जायेगी॥

श्रवण०—गुरू महाराज—

सूरज चहे आकाश से पृथ्वी पै उतर जाय।
पृथ्वी भी चहे शेष के मस्तक से खिसक जाय॥

बादल चहे पानी की जगह आग को बरसाय ।
भूकम्प हो संसार में या मेरु डगमगाय ॥
दुनिया की सब बलायें मेरे सर पै टूट जांय ।
कांवर नहीं छुटेगी चहे प्राण छूट जांय ॥

सब—धन्य, धन्य ।

दशरथ–(दुशाला और माला देकर) और कुछ नहीं तो, कीजिए इतना ही स्वीकार, लीजिए स्वल्प प्रेम उपहार ।

श्रवण०–(उपहार लेकर) उपकार, उपकार (पिता से) पूज्य पिता जी प्रस्थान का समय आगया है, मुहूर्त आचुका है । यदि आज्ञा हो तो ब्राह्मणों को बुलाया जाय और यात्रा सुफल होने के हेतु आपके कर–कमलों से कुछ दान पुण्य कराया जाय ।

शान्त्वन–तथास्तु ।

दशरथ–(सेवक से) सेवक, जाओ और ब्राह्मणों को बुला लाओ ।

सेवक–जो आज्ञा ।

(जाता है, श्रवणकुमार माता पिता को कांवरी में बिठाते हैं, ब्राह्मण आते हैं)

ब्राह्मण–जय हो, जय हो ।

श्रवण०–[पिता से] पिता जी, हाथ में जल लीजिये और संकल्प कीजिये

(शान्त्वनदेव हाथ में जल लेते हैं)

ब्राह्मण०—हरिः ओं विष्णुर्विष्णुरद्योन्नमः परमात्मने श्रीपुराण-पुरुषोत्तमाय अद्य ब्रह्मणोह्नि श्रीश्वेतबाराहकल्पे, वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टविंशतितमे युगे त्रेतायुगे तृतीय चरणे, जम्बूद्वीपे भरतखण्डे, आर्यावर्ते, पुण्यक्षेत्रे वर्तमान चक्रवर्ति सम्वत्सरे मासानां मासोत्तमे मासे कार्तिकमासे शुक्लपक्षे द्वितीयायां चन्द्रवारान्वितायां गर्ग-गोत्रोत्पन्नोहं, शान्त्वनगुप्तोहं तीर्थ—यात्रा सफल कामनया एतानि विविधानि पात्राणि वस्त्राभूषणानि च यथासंख्यकान् ब्राह्मणान् अहं दास्ये ।

श्रवण०—आज मैं माता पिता की यात्रा सुफल होने के वास्ते अपना मकान, बाग़, जेवर कपड़ा आदि सर्वस्व दान करता हूँ ।

ज्ञानवती—बेटा, सर्वस्व दान करना ठीक नहीं है। हमारे लिये नहीं तो अपने लिए, अपने लिये नहीं तो अपनी स्त्री के लिए तो कुछ रख ।

श्रवण०—माता जी आपकी कृपा से मुझे ये सब वस्तुएँ फिर मिल जांयगी, परन्तु ऐसी घड़ी बार बार नहीं आयगी ।

मिलें पदारथ चार, मिलें सेवक सुत नारी ।
मिलें भूमि, धन धाम, अश्व, गज आदि सवारी ॥
चक्रवर्ति पद मिले मिले सम्पत भी सारी ।
ऐसी सुन्दर घड़ी, नहीं मिलती महतारी ॥

ब्रह्मा विष्णु महेश भी, तप करने से आ मिलें ।
ऐसे उत्तम समय तो, बार बार फिर ना मिलें ॥

(महर्षि अत्रि का प्रवेश)

अत्रि–धन्य हो, धन्य हो । श्रवणकुमार, तुम्हारी पितृभक्ति का प्रकाश त्रिभुवन में प्रकाशित होरहा है । तुम्हारे यश का गान इन्द्रादि देवताओं में, सूर्य, चन्द्र आदि नक्षत्रों में और ऋषियों के स्थलों में ध्वनित होरहा है ।

सब—जय हो, अत्रि भगवान् की जय हो ।

वशिष्ठ–श्री अत्रिदेव जी, श्रवणकुमार को आशीर्वाद दीजिये ।

अत्रि–कल्याण, कल्याण । श्रवणकुमार, तुम जैसे पितृभक्त पुत्र को देखने के लिए वाल्मीकि, भारद्वाज, गौतम, अगस्त्य, विश्वामित्र, परशुराम आदि महापुरुष भूतल पर और गणेश, ब्रह्मा, विष्णु, शंकर, इन्द्र, वरुण कुवेर आदि देवता आकाश मण्डल पर छारहे हैं । [पुष्पवर्षा] अब तुम अपने माता पिता की कांवरी उठाओ और तीर्थयात्रा के लिये जाओ ।

(श्रवणकुमार कांवरी कंधे पर उठाते हैं)

श्रवण०–जानी है पुराण और शास्त्र की कथा अनेक,
जानी नाना भाँति नई चातुरी दिखानी है ।
जानी है वणिज व्यापार शिल्प रीति सभी,
जानी अति प्यार प्रेम भरी मृदुवानीहै ॥

जानी है प्रबंधकला, नाट्यकला, काव्यकला,
जानी साम दाम दण्ड भेद की कहानी है ।
चौसठ कला जानी चतुर्दश विद्या जानी,
पितृभक्ति जानी न तो वृथा ज़िन्दगानी है ॥

❀ गाना ❀

कांधे यह मात पिता की कांवर उठाई ।
पाया उत्तम दिन मानूं सुफल कमाई ॥
त्रिभुवन की शोभा सारी मेरे घर आई ।
पिता मेरे महाप्रभु, माता महामाई ॥
नाना तीर्थों की यात्रा होवे सुखदाई ।
जनम जनम मांगू यही सेवकाई ॥

—०—

(सीन ट्रांसफ़र देवताओं का दर्शन)

देवतागण—धन्य है, धन्य है, श्रवणकुमार, तुम्हारी मातृ पितृ-भक्ति को धन्य है ।

(देवताओं का पुष्प बरसाना, धीरे धीरे जवनिका पात होना)

ड्रापसीन





ॐ

दूसरा अङ्क

प्रथम दृश्य

नन्दशङ्कर का मकान

(नन्दशंकर की स्त्री बिजली का अपनी सखियों के साथ खेलते हुए दिखाई देना)



गाना

सब--चलो सहेली सब मिल के आज ।
जीवन---मद---रस---रंग भीनी ॥
अठखेली के साजे नवेली ने साज ।
हंस हंस सखियां वश कीनी ॥

रसिका--[ललिता से] तू ब्याही है या क्वांरी, बोल ?

ललिता--हूं मैं क्वांरी--

मालती--मुंह तो खोल ।

बिजली--(रसिका से) तुम्हें कौनसी बहू है प्यारी ।

रसिका--[ललिता को बताकर] हमें यह ललिता है प्यारी ।

मालती--इस ललिता से क्या तुमको काज ?

रसिका--यह ललिता है सब की सरताज ।

—०—

रसिका--भला बिजली, मैं एक बात कहती हूँ। तू माने तो सब सखियों को आनन्द हो ।

बिजली--मैं तो जो तू कहे वही मानने को तैयार हूं ।

रसिका--अच्छा तो तेरी सास--नन्दू की माँ जब यहां आये, तब तू कहना कि--"सासू जी ज़रा नाच दिखाओ" । हमें विश्वास है कि तेरे इतने ही कहने पर वह नाचने लगजायगी । और जब वह नाचने लग जायगी तो—

मालती--बड़ी-

सब-बहार आयगी ।

बिजली-परन्तु, मैं तो अपनी सास से ऐसा नहीं कह सकती । कोई सुनेगा तो नाम धरेगा ।

रसिका--वाह, नाचने के लिए नहीं कह सकती, पर वैसे रोज 'रढ़ियाई पुतियाई' किया करती है ?

मालती–हाँ ! जो तू ऐसा नहीं करेगी तो हम तेरे नाम धरेंगी ।

नन्दू की माँ-(नेपथ्य से) बिजली, ओ बिजली, (प्रवेश करके) अरी बिजली ! यहां क्या कर रही है ?

बिजली–सखियों में खेल रही हूँ–माजी । क्या आज्ञा है ?

नन्दू की माँ–बेटा मुझे चार पैसे की जरूरत है । नंदुआ अभी तक परदेश से नहीं आया है । तू पैसे देदेती तो मैं बाज़ार से कुछ भाजी ले आती । ला, चार पैसे देदे ।

बिजली–मैं कहाँ से दे दूं ? क्या तुमने मेरे पास थैली जमा कर रक्खी है जो उसमें से पैसे निकाल दूं ? मुझसे पैसे वैसे कुछ न मिलेंगे । वह जो कुछ कमा के लाते हैं सो तुम्हीं को दे जाते हैं । वाह, जोड़ने को तुम और ख़र्च करने को मैं ? ख़ूब रही ।

नन्दू की माँ – बेटा, मेरे पास का ख़र्च आज निवड़ गया है, उधार ही दे दे नन्दुआ जब आजायगा तो तुझे तेरे पैसे दिलवा दूंगी । ला, दे दे । मेरी लाड़िली, दे दे ।

बिजली–आज कैसी भोली भाली बातें करती हो ? सौ दिन सास के तो एक दिन बहू का। जब तुम्हारे बेटे से मैं ख़र्च माँगा करती थी तो तुम्हीं कहा करती थीं अभी नहीं फिर मिल जायगा। तो जाउ, तुम्हें भी फिर मिल जायगा ।

नन्दू की मां – मैंने कभी इनकार थोड़े ही किया था।

बिजली – मैं भी इनकार कब करती हूँ ?

नन्दू की माँ – तो ला, हंसे मत। चार पैसे दे दे। अब के नन्दुआ जब आजायगा तो मैं तेरे कानों की बिजली बनवा दूंगी, और एक बढ़िया साड़ी तुझे मंगवा दूंगी।

बिजली – अच्छा तो एक शर्त पर पैसे मिलेंगे।

नन्दू की माँ – वह शर्त ?

बिजली – तुम्हें नाचना अच्छा आता है सो ज़रा अपना नाच दिखा दो।

नन्दू की माँ – यह क्या कहा ? बुढ़ापेमें मेरी हँसी उड़ाती है ? यह सब तेरी सखियें क्या कहेंगी ?

बिजली – इसमें ऐब ही क्या है ? भले घर की तमाम बहू और बेटियां अपने अपने घरों में नाचा करती हैं। पुरुष बाहर अपने इष्ट मित्रोंमें खेला कूदा करते हैं और स्त्रियाँ भीतर अपनी बहनेलियों में गाया बजाया करती हैं।

रसिका व मालती – नन्दू की माँ, हम सब भी बिजली ही की तरह तुम्हें अपनी बड़ी बूढ़ी समझती हैं। मनोरञ्जन के लिए ऐसा कहती हैं।

नन्दू की मां – तो क्या तुम सब की भी यही मर्ज़ी है ?

सब सखियां – हां, हम सब की भी यही राज़ी है।

नन्दू की मां – अच्छा बाबा, तो ले आओ घुंघरू । नाचे देती हूँ ।

(सखियों का घुंघरू पहनाना)

बिजली – अब तो चार पैसे क्या, सोलह पैसे भी देदूंगी ।

(नन्दू की मां नाचती है, सखियां गाती हैं)

❀ गाना ❀

सखियां-कजरवा ने हाय सैय्यां, बड़ा दुख दीना ।
सुरमा होता तो मलमल धोती । कजरवा० ॥
नन्द होती तो हिल मिल रहती । जिठनियाँ० ॥

—०—

(नन्दशंकर के साथ विद्या देवी का प्रवेश)

विद्या०–(स्वगत) हैं हैं, यह मैं क्या देख रही हूं ! बहू सास को नचाती है !! (कुछ ठहर कर) मेरा यह भाई खड़ा खड़ा यह तमाशा देख रहा है और अपनी स्त्री से कुछ नहीं कह सकता है !!! (प्रकट, नन्दू की मां से) माता जी, माता जी प्रणाम ।

नन्दू की मां–(नाच बन्द करके) ओ हो हो हो । बेटी विद्यादेवी, सुखी रहो । भला तुम बिना खबर भेजे अचानक कैसे चली आई ? अकेली ही आई या किसी को साथ में लाई ?

विद्या० – भाई के साथ आई हूँ, यही तो बुला के लाये हैं । परन्तु इन्होंने तो वहां कहा था कि माता जी बहुत बीमार हैं, मुंह

देखना हो तो चल। हे भगवान्, किसने मेरे भाई को झूंठ बोलना सिखाया ? माजी, आप तो अच्छी हो, अच्छी खासी माता जी को भाई ने मृत्युशय्या पर पड़ी हुई बताया !

नन्दू की मां – [नन्दशंकर से] क्यों नन्दुआ, यह झूठी बातें बनाना तुझ में कहां से आया ? हे नारायण, मेरा सतयुग, किस की संगत में बैठकर कलियुग होगया !—

पाप नहीं है—दूसरा—जग में झूठ समान ।
झूठ बोलना जगत् में सब पापों की खान ।।

नन्दुआ, यह तू ने क्या किया ?

नन्द० – अच्छा ही किया, जो कुछ किया अच्छा ही किया। यह बेचारी सास की ख़िदमतगारी करके भी रोज़ वहाँ गालियाँ खाती थी। नाना दुख उठती थी। इसलिए तुम्हारी बीमारी का बहाना करके इसे बुला लाया। बताओ इसमें मैंने कौनसा पाप कमाया?

नन्दू० – यही कि झूठ बोलकर इसे यहाँ लाया।

विद्या० – जाने दो माजी अब इन बातों को। नन्दू भैया, अबमैं तुझ से एक और बात कहती हूँ।

नन्दू० – वह क्या ?

विद्या० – वह यह कि तू अपने पिता के उच्चकुल में नीचता का एक बड़ा हिस्सा उत्पन्न हुआ है। पृथ्वी पर पृथ्वी का भार होकर जन्मा है।

नन्द०—क्यों...... ?

विद्या०—अरे, जिस माता ने तुझे नवमास उदर में धारण किया, जिस माता ने पैदा होने के दिन से तेरा लालन पालन किया, उसी माता का मान इस स्त्री के ध्यान में पड़ कर तू भूल गया ? तेरी नालायक़ स्त्री तेरी माता को नचाती है और तुझ से शिक्षा भी नहीं दी जाती है ?

नन्दू की मां—सच कह रही है बेटी। दिन रात यह अपनी बहू के पास बैठना पसन्द करता है। घर का कुछ काम न तो खुद करता है न उसे करने देता है। जब देखो तो 'बहू' 'बहू' ही चिल्लाया करता है। और क्या कहूं, शर्म की बात है, जब खाने को बैठता है तो उसे भी अपने साथ खिलाया करता है।

नन्द०—दुनिया में जितने हैं सब मौज करते हैं। धर्म कर्म के परिणाम अन्धेरे की बातें हैं, और मौज करने से प्रत्यक्ष में आनन्द के फल मिलते हैं। स्त्री क्या मुफ़्त में आई है ? उसकी ख़ातिर न की जाय तो भी तो बुराई है।

विद्या०—अरे अभागे, सृष्टि में प्रकृति और परमात्मा के समान उपकार करनेवाले दूसरे लक्ष्मी और नारायण माता पिता हैं। समुद्र के जल का अन्त है परन्तु माता पिता का उपकार अनन्त है। राजाओं में इन्द्र, नक्षत्रों में चन्द्र, पशुओं में गऊ और पर्वतों में कैलास जिस प्रकार शोभायमान हैं, उसी प्रकार

संसार के साथियों में माता पिता का दर्जा सब से ऊँचा और ज्यादा मान्य है:-

माता पिता का इतना है संतान पै उपकार ।
संतान जन्म भर भी न हो सकती है उद्धार ।।
जाते हैं जिस तरह से वह औलाद पै बलिहार ।
वाणी न बता सकती है वह भाव और प्यार ।।
धन और बल हो पास तो औरत अनेक हैं ।।
पर विश्व के घर में सदा-मां-बाप एक हैं ।।

नन्दू की मां-धन्य, धन्य । विद्या बेटी, तेरी धर्म में ऐसी प्रवृत्ति देखकर मैं अपने भाग्य को धन्य मानती हूं । तू ने मेरी कोख का मान बढ़ाया है । क्या कहूँ, एक ही समुद्र से उत्पन्न हुए लक्ष्मी और शंख में जितना भेद है उतना ही तुझ में और नन्दशङ्कर में मैंने अंतर पाया है । बेटा, ऐसा उत्तम ज्ञान तुझे किसने सिखाया है ?

विद्या०-सती धर्म का सम्पूर्ण रहस्य मेरे स्वामी ने मुझे बताया है । माता पिता की पूजा, सास श्वशुर की सेवा, स्त्री धर्मानुसार सत्य, नम्रता, दया, क्षमा आदि आदि गुणों का प्रकाश उन्हीं की कृपा से मुझ में आया है । स्त्री अबला है और मूर्ख है । उसको बल और ज्ञान देना पुरुषों ही का कर्त्तव्य है । गृहस्थीरूपी समुद्र को पार करने के लिये, स्त्री रूपी नौका के

वास्ते स्वामी रूपी नाविक चाहिये। नाविक नौका को जहां ले जाय वहां वह जा सकती है—

आज्ञा में पति की चले यह नारी का कर्म।
शिक्षा देवे नारि को यह नर का है धर्म॥

नंदशंकर—हैं, यह मैं क्या सुन रहा हूँ! ऐसा विदित होता है मानो मेरे हृदय पट की कालिमा साफ करके मेरी आत्मा पर कोई प्रकाश डाल रहा है। विद्या, तुम साक्षात् विद्या हो, तुम साक्षात् शारदा हो। पापी चम्पकलाल की संगति से मेरी बुद्धि भ्रष्ट होगई थी। मैं तुम से क्षमा चाहता हूँ। (माता से) माता जी, मैं तुम्हारा अपराधी हूँ। मातृ—सेवा की महिमा मैंने अब तक नहीं जानी इसका मुझे पश्चात्ताप है। मुझे क्षमा करना। महिमामयी मैया, मुझे क्षमा करना! सती विद्यादेवी के उपदेश से आज मैंने आप के स्वरूप को पहिचाना। अब मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि शुद्ध अन्तःकरण से अपनी माता की सेवा करूंगा, माता के ही चरणों में जियूंगा और माता के ही चरणों में मरूंगा—

माता का ऋणी आत्मा और प्राण है मेरा।
माता की सेवकाई में कल्याण है मेरा॥
पहुँचाउँगा संसार में अब इस प्रमोद को।
भूलूंगा चिता में भी न माता की गोद को॥

(माता को साष्टांग करता है)

विद्या०—धन्य, तेरी बुद्धि शुद्ध हुई। तू पवित्र हुआ। मैं भी कृतकृत्य हुई। अपने पूज्य स्वामी और अपने महामान्य सास श्वशुर की सेवा में जाना चाहती हूँ।

बिजली—महादेवी, आप के महा उपदेश से आज मेरा जन्म सुफल होगया। स्त्री—धर्म क्या है, माता किसे कहते हैं, पति की सेवा कैसी है, यह सब रहस्य मुझे मालूम होने लगे हैं। अब मैं आपके चरणों की सौगन्द खाकर प्रतिज्ञा करती हूँ कि आज से अपने सास श्वशुर को शंकर और पार्वती समझूंगी, तथा अपने पति को परमेश्वर का स्वरूप जानकर पूजूंगी। पिछले अपराधों की क्षमा चाहती हूँ—

कर्त्तव्य—अविद्या ने—मेरा सब भुला दिया।
विद्या ने रास्ता मुझे मेरा दिखा दिया॥
मैं सो रही थी नींद में, मुझको जगा दिया।
घर में दिया भी ज्ञान का ऐसा जला दिया॥
अज्ञान——अंधकार का सर्वत्र नाश है।
अब देखती जिधर हूँ उधर ही प्रकाश है॥

विद्या०—कल्याणमस्तु। सुनो, मैं तुम्हें अपना ध्येय सुनाती हूँ। तुम्हें गीत गाने का बड़ा चाव रहता है इसलिए तुम्हारे गाने योग्य एक गीत तुम्हें बताती हूँ। गाना बजाना बुरा नहीं है, परन्तु केवल मनोरञ्जन ही के लिए इसे न समझना चाहिये।

यह स्वास्थ्य के लिए भी बड़ा लाभदायक है। शृंगार-रस के सने हुए गीत घर की बहू बेटियों को अब नहीं गाने चाहिये। गाने ऐसे हों जो उपदेश से भरे हों। समझीं ? आज से तुम विषैले गानों को छोड़ कर ऐसे गीत गाया करो–

❀ गाना ❀

वही जग में सतवन्ती नार ।
पति ही जिसका नेम धर्म हो,
पति ही हो आचार ।
पति की सेवा, पति की पूजा,
हो जिसका शृंगार । वही० ॥
पति अच्छा हो चाहे बुरा हो,
है अपना भरतार ।
पतिव्रता का धर्म यही है,
करे उसी से प्यार । वही० ॥
नारी का पति ही ईश्वर है,
पति ही प्राणाधार ।
पति ही सार वस्तु है जग में,
और सूना संसार । वही० ॥

(विधा का एक ओर, दूसरी ओर सब का जाना)

—

दूसरा दृश्य

प्रयाग (सङ्गम)

(श्रवणकुमार अपने माता पिता को संगम में स्नान करा चुके हैं,
और अब त्रिवेणी का कीर्त्तन कर रहे हैं)



❀ गाना ❀

नमो हे त्रिवेणी पतित-पावनी ।
सकल दुःख सन्ताप, अघ पाप,
सब शाप की नाशिनी तारिनी ।
गङ्गा——यमुना——सरस्वती,
सङ्गम है तीनों ज्योति का ।
नाशक है तीनों ताप का,
दाता है षट्सम्पत्ति का ।
जननी, नमो ! तरणी, नमो !!
वरणी नमो !!! (नमो)



श्रवण०—

जय, जय, श्री त्रिवेणी महारानी की जय । हे तीर्थराज ! जिस प्रकार यहां गङ्गा-यमुना का संगम चिरस्थायी है उस प्रकार मेरे हृदय में भी माता पिता की भक्ति सदैव विचहारती

रहे । मेरे पुरुषार्थ की चादर मातृ पितृ की सेवा के साज से ही साजती रहे—

वे मेर आराध्य हों आराधना मुझ में रहे ।
जन्म जन्मान्तर यही बस भावना मुझ में रहे ॥

शान्त्वन–बेटा, प्रयाग सब तीर्थों का राजा है । इसलिए इसें तीर्थराज कहते हैं । जो यहां आकर स्नान करते हैं वे अक्षय पद को प्राप्त होते हैं । माता गङ्गा, मैया यमुना, जननी सरस्वती तीनों का यहां संगम हुआ है । इस कारण तीनों देवताओं का यहाँ निवास है । तीनों ताप तीनों रोग का नाश करनेवाला यह प्रयाग है:–

माघ मकर सक्रांति पर करते हैं जो स्नान ।
पाप मुक्त हो वे पुरुष–पाते पद निर्वाण ॥

ज्ञान०–हमारे बड़े भाग्य हैं जो हम तीर्थराज पर विद्यमान हुए । श्रवण जैसे सुपुत्र द्वारा त्रिवेणी में स्नान हुए–

बेटा सेवा से तेरी, हैं हम सुखी महान ।
यश तेरा संसार में, होवे सूर्य्य समान ॥

शान्त्वन–चलो बेटा, प्रयाग का स्नान हो चुका । अब हमें काशी धाम कराओ । श्रीविश्वनाथ के चरणों में पहुंचाओ ।

(चार पांच पण्डाओं का प्रवेश)

पण्डागण–जय हो, यजमान भैया की जय हो ।

पहला पण्डा—यजमान भैया, श्री वेणीमाधो भगवान् के नाम पर कुछ दान मिलना चाहिए। पण्डा लोगों की दक्षिणा मिलनी चाहिये।

श्रवण०—महाराज, जितनी मोहरें हम घर से लेकर चले थे वह दान दक्षिणा में दे चुके। अब हमारे पास पाई नहीं।

दूसरा पण्डा—वाह, हमने सुना था कि श्रवणकुमार बड़ा दान देनेवाला है। जब देता है तब सोना और मोहर ही देता है। तू तो कहता है कि मेरे पास पाई नहीं?

तीसरा पण्डा—सब कुछ है यजमान के पास सब कुछ है। भैया, पण्डा जी के लिए तुम चाहे कुछ दो या न दो, परन्तु तीर्थराज पर ऐसे मिथ्या वचन न कहो कि हमारे पास पाई नहीं।

पहला पण्डा—मिथ्या कहां कहते हैं? यह तो ठीक ही है कि इनके पास पाई नहीं। गले में कण्ठा है, बांह में कड़ा है, कान में लौंग है, हाथ में छल्ला है, परन्तु पाई नहीं है।

चौथा पण्डा—अरे दादा, इससे क्या मिलेगा? बड़ा आदमी होता तो अपने कंधे पर काँवर लादे न फिरता। किसी नौकर को साथ रखता। यह तो कोई भिखारी मालूम होता है।

तीसरा पण्डा—(चौथे से) तू ने पण्डा जाति में वृथा जन्म लिया है। अरे हम तो भिखारी से भी अपने टके सीधे कर लेते

हैं। (श्रवण से) यजमान भैया, इसी मुहूर्त्त में जल लेकर कुछ संकल्प करो।

पहला०—हां, यात्रा सुफल न होगी जब तक तीर्थ पुरोहित की दक्षिणा न मिलेगी। कुछ स्वर्ण—दान करो, वस्त्र दान करो, अन्न दान करो, गौ दान करो और यह सब दान करके फिर पण्डा जी की पूजा करो। ऐसा न करोगे तो सब करा कराया बिगड़ जायगा। उलटा पाप चढ़ जायगा।

श्रवण०—किसी प्रकार भी उद्धार न होगा ?

दूसरा०—हां जब तक पण्डा जी प्रसन्न न होजावेंगे बेड़ा पार न होगा।

श्रवण०—तो मैं क्या करूं ?

पहला०—दक्षिणा दो। हमने तुम्हें विधि—पूर्वक त्रिवेणी में स्नान, अक्षयवट और वेणी—माधव के दर्शन, तथा अनेकानेक छोटे बड़े यहां के तीर्थ कराये। जब दक्षिणा देने का समय आया तो तुमने बहाने बताए। अरे वाह राजा !

श्रवण०—महाराज ! स्नान के समय, दर्शन के समय और और क्या कहूँ समय समय पर यथाश्रद्धा मैं आपको दक्षिणा देता रहा हूँ।

पहला०—अरे, वह दक्षिणायें तो उसी "समय—समय" की थीं। अब तो हम यात्रा सम्पूर्ण होजाने की दक्षिणा चाहते हैं।

पण्डाओं की भेंट मांगते हैं। तुम अलग अलग न देना चाहो तो इकट्ठी दे दो, हम बाँट लेंगे।

श्रवण०—(यमुना से) माता यमुना जी, यह कैसा सन्ताप है? तुम्हारे द्वार पर आकर यह कैसा पश्चात्ताप है? यह सुख में दुःख है या पुण्य में पाप है? अब मैं क्या करूं? यदि मैंने शुद्ध हृदय से माता पिता की सेवा की है तो मेरी सहायता करो, मेरी रक्षा करोः—

यदच्छातो च्छातो च्छलदमलकच्छच्छवि-वहाम् ।
स्वतः प्राच्छ प्राच्छच्छबलमकरीकच्छपकुलाम् ॥
लसल्लीलालोलत्कुहरवर कल्लोलकलिताम् ।
स्मरामि त्वां निर्वाऽनुक्षणमपि त्वां चितवतीम् ॥

(यमुना का प्रकट होना)

यमुना—कल्याण, कल्याण। मेरे प्यारे पुजारियो, तुम्हारा धर्म्म है कि यात्री को सब प्रकार प्रसन्न रखना, और जो कुछ वह श्रद्धापूर्वक दान दे उसी को सन्तोष के साथ स्वीकार करना। इसके विपरीत, जो पण्डे यात्रियों का हृदय दुखाते हैं वे तीर्थस्थान को कलंकित करते हुए अपना लोक और परलोक सब बिगाड़ते हैं। (श्रवण से) श्रवणकुमार, मैं तुम्हारी मातृ पितृ-भक्ति से प्रसन्न हूँ। तुम सानन्द प्रस्थान करो। तुम्हारी यात्रा सफल हुई, मैं साक्षी हूँ।

श्रवण०—जय, यमुना माता की जय

—०—

तीसरा दृश्य

(मार्ग)

(चम्पकलाल का प्रवेश)

चम्पक०—अहा हा हा हा हा, मैं भी वह धूर्त्तराज हूँ कि बड़े बड़े बाँके तिरछे मेरे आगे सर झुकाते हैं। जिस दिन से मैंने अपने मां बाप को घर से निकाला है उस दिन से सारे मुहल्ले वाले मुझ से थर्राते हैं—

ऐंठ के चलना चलाना कोई मुझसे सीख जाय।
शान के क़िस्से सुनाना कोई मुझ से सीख जाय ॥
दूसरे पै रँग चढ़ाना कोई मुझ से सीख जाय।
सिर्फ़ बातों में हराना कोई मुझ से सीख जाय ॥

ग़र्ज़ कि इतना बड़ा होशियार हूँ परन्तु अपनी स्त्री चमेली से लाचार हूँ। वह "यह ला," "वह ला" की फ़र्माइशों से मेरा दिवाला निकाले देती है, जब घर में जाता हूँ तो बुरी तरह ख़बर लेती है। ख़ैर जी, इसमें भी क्या हर्ज है, आख़िर तो अपनी औरत है—

औरत को माल खिलाना भी जायज़ है।
बदले में गाली खाना भी जायज़ है ॥

मां, बाप अगर कुछ कहें भी तो बेजा है ।
औरत की जूती खाना भी जायज़ है ॥

(सामने देख कर) हैं ! यह सामने से कौन आरहा है ? विद्यादेवी !

(विद्या का प्रवेश)

विद्या०—(स्वगत)

❀ गाना ❀

प्रभु मेरे स्वामी को सुख दीजो ।
सब दुख को हर लीजो । प्रभु० ॥
प्रीतम का मोहि दरस दिखादो ।
विरही मन की प्यास बुझा दो ।
कृपा-दृष्टि अब कीजो । प्रभु० ॥

—०—

चम्पक०—भक्तवत्सल, काम भक्तों का करो तब नाम हो ।
क्यों नहीं करते दया, जब तुम दया के धाम हो ॥

विद्या०—हैं ! यह कौन ?

चम्पक०—आपका सेवक, चम्पक । महादेवी, इस समय तुम व्याकुल हिरनी की तरह कहां भागी जारही हो ? ऐसी क्या चिन्ता है जिसके कारण कुम्हला रही हो ? मेरे योग्य कोई सेवा हो तो मैं तैयार हूँ । ताबेदार हूँ ।

विद्या०—भाई, मेरी चिन्ता का और कोई कारण नहीं है। बात केवल इतनी है, कि मैं अपनी माता से मिलने गई थी और मेरे पीछे मेरे स्वामी सास श्वशुर के साथ तीर्थयात्रा को चले गये। तुम्हें यदि मालूम हो तो इतना बता दो कि वह किस तीर्थ की ओर गए हैं।

चम्पक०—यह मालूम करके तुम क्या करोगी?

विद्या०—उनके पास जाऊँगी, उनके साथ साथ मैं भी अपने सास-श्वशुर की सेवा बजाऊँगी।

चम्पक०—व्यर्थ है। ऐसी कल्पना करना मूर्खता है। यदि तुम से तुम्हारा स्वामी स्नेह रखता होता तो तुम्हें छोड़कर अकेला अपने मां बाप के साथ तीर्थयात्रा को क्यों चल देता? वह तो अपने माता पिता पर मरता फिरता है। तुम्हें पैर की जूती के समान समझता है।

विद्या०—ऐसा न कहो भाई चम्पकलाल, मेरे स्वामी की इस प्रकार निन्दा न करो। उन्होंने मुझे नहीं छोड़ा था, मैं ही उन्हें छोड़ कर अपनी माता के यहां गई थी। माता की बीमारी के समाचार ने मुझे ऐसा करने पर विवश किया था। उनका तीर्थ-यात्रा का विचार तो मेरे सामने ही निश्चित होगया था। उधर माता बीमार नहीं निकलीं तो मैंने फिर सासरे की सुधि की। वहां मालूम हुआ कि वे सब तीर्थयात्रा को चले भी गए। अब प्रश्न यह है कि पहले किस तीर्थ की ओर गए?

चम्पक०—बड़ी सीधी ! बड़ी भोली !! तुम सचमुच बड़ी नासमझ हो । अरे तुमने यह भी सुना कि वह अपना मकान, अपनी मिलकियत सब धर्मार्थ कर गए ? तुम्हारा ख़याल होता तो कुछ तुम्हें छोड़ न जाते ? तुम सचमुच उनके पैर की जूती हो । विद्यादेवी, माता पिता के भक्त अपनी स्त्री को सचमुच पैर की जूती समझा करते हैं । उस मूर्ख की मूर्खता को तो देखो कि जब बुड्ढों को चिता में जलाने का समय आया तो कन्धे पर लाद कर तीर्थयात्रा को धाया । ऐसे नालायक़को तुमने अपना स्वामी समझकर हृदय मन्दिर में पधराया ? इतना विचार गँवाया ?

विद्या०—बस, बस, यह निन्दा मैं और नहीं सुनना चाहती पुत्र को अवश्य अपने माता पिता की सेवा बजाना चाहिये । संसार में आकर जीव का पहला कर्त्तव्य यह है, कि उसे देवऋण गुरुऋण और पितृऋण चुकाना चाहिए । सुपुत्र अपने माता पिता के जीवन में उनकी सेवा करते हैं और जीवन उपरान्त जलदान देके, श्राद्ध आदि कर्मों को करके, उनकी आत्मा को शान्ति पहुंचाते हैं । इस लोक और परलोकवाली पितृ—सेवा यदि ठीक होजाय तो इसी से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पदार्थ मिल जाते हैं ।

चम्पक०—झूठ, सब झूठ । श्राद्ध—आदि कर्म करने कराने वालों ने क्या शान्ति का ठेका ले रक्खा है ? मरने के बाद क्या

होता है, यह किसने देखा है ? मैं ऐसी गप्प नहीं मानता, मैं तो यह जानता हूँ:—

बिलकुल है व्यर्थ श्राद्ध तर्पण, निःसार है सब अर्चन वंदन ।
संसार में है बस ठीक यही हो, प्यारी के मुख का दर्शन ॥

विद्या०—यह क्या बकता है पापीजन ?

चम्पक०—पापी मत कहु, कहु प्रेमीजन । सुन्दरी, तुम जैसी स्त्री यदि मुझे मिलती, तो मैं बताता कि प्रेमीजन किसे कहते हैं? कवियों की लेखनी का शृङ्गार-रस क्या है ? संसार में आनन्द किसका नाम है ?

विद्या०—चुप, चुप, कामी कुत्ते ! एक सती को अकेली देख कर इस तरह नियत बिगाड़ता है:—

कहते हुए यह बात जुबां कट नहीं जाती !
पापी के बोझ से यह ज़मीं फट नहीं जाती !!

चम्पक०—प्यारी, भुवनमोहिनी, गुणसुन्दरी, अब सच तो यह है, कि जब श्रवण से तेरा विवाह हुआ था तभी तेरे प्रेम का अंकुर मेरे हृदय में उपजा था । आज तुझे एकांत में देखकर मेरी तबियत फड़क उठी है, बरसों की दबी हुई अग्नि भड़क उठी है ।

विद्या०—रहने दे, रहने दे, अपनी यह दुर्गन्धि अपने रौरव मुख ही में रहने दे:—

चण्डाल, क्यों कुदृष्टि से देवी को है तकता ?
क्यों सिंहिनी के सामने इस तरह है बकता ?

तू क्या है अगर विश्व की सब शक्तियां आयें—
तो भी पतिव्रता को कोई छू नहीं सकता ॥

चंपक०—अरे, तुमतो नाराज़ होगई। विद्या, तुम तो स्वयं विद्या हो। तुम यह नहीं जानतीं—शास्त्र में लिखा है कि जिसका स्वामी विदेश जाय या साधू होजाय तो उस स्त्री को दूसरा स्वामी करलेना चाहिये ?

विद्या०—ऐसा किसी शास्त्र में नहीं लिखा है, और अगर है तो मैं उसे मानने को तैय्यार नहीं। क्योंकि वह पतिव्रत-धर्म के विरोधियों की कपोलकल्पना है:—

धर्म-शास्त्र तो सदा यही उपदेश बखाने।
नारी का है धर्म स्वामि को ईश्वर जाने ॥
सास को गौरी जान श्वशुर को शंकर माने।
भ्राता, पुत्र समान सकल जग को पहचाने ॥
सोते, जगते सब समय अपना स्वामी एक है।
आराधन हो उसी का यही सती की टेक है ॥

चंपक०—अच्छा, तू इस प्रकार नहीं मानेगी। अब जबर्दस्ती तुझे अपनी स्त्री बनाता हूँ। देखना है तेरी कौन सहायता करता है।

विद्या०—परमात्मा, जो सदा धर्म्म की रक्षा करता है।

चंपक०—अच्छा तो तेरे परमात्मा को देखना है,

विद्या०—परमात्मा को फिर देखना, पहले सती की पवित्र आत्मा ही का प्रभाव देखले:—

अपनी बुराइयों का तू परिणाम आप देख ।
पापी, तू अपनी आंख से ही अपना पाप देख ॥
लाएगा अभी रंग सती का तू शाप देख ।
देवी हूँ मैं, देवी का विलक्षण प्रताप देख ॥
पहुँची सती की टेर जनार्दन के तीर में ।
वह देख, कोढ़ होगया तेरे शरीर में ॥

(चम्पकलाल के हाथों में कोढ़ होजाना)

—०—

चौथा दृश्य

चम्पकलाल का मकान ।

(चमेली का प्रवेश)

गाना

चमेली—

फूलनआ भरी क्यारी, लदीं डारी डारी,
बनी मतवारी, रंगीली मैं नारी, (२)
हूँ नाजुक नखरेवाली, सुंदर और भोली भाली ।
उमरिया मोरी बाली है कि हां हां,
गालों पै मेरे लाली है कि हां-हां, खिली है फुलवारी ।

—०—

मैं ऐसी तरहदार, वज़ेदार, शानदार, हुनरदार, और ब्याही गई एक मुफ़लिस मुरदार को। अगर ब्याही जाती किसी सरदार को तब वह देखता मेरी बहार को। यह कम्बख्त चम्पक, जब कुछ फ़रमाइश करती हूँ तभी होजाता है चम्पत। मां बाप की कमाई सब निबड़ गयी। अब ख़र्च चले तो कहां से ? यहां रोज़ चाहिये दाल में नमक और वहाँ चम्पक पर है ख़ाली बक बक। भला हो चेतनदास का कि जिनकी कृपा से एक वक्त की रोटी तो चलती है। मैं तो अब उन्हीं के पास रहजाऊँ तो अच्छा, इस घर वाले के साथ साथ इस घर को भी आग लगाऊँ तो अच्छा—

बस वही जगह सुखदायक है जिस जगह न दुखका नाम मिले।
अच्छा खाना, अच्छा कपड़ा, बेफ़िकरी और आराम मिले॥

(चम्पक का प्रवेश)

चम्पक०—(नेपथ्य से) किवाड़ें खोलो।

चमेली—आगए निकम्मेसिंह किवाड़ें खुलवाने के लिए।

(किवाड़ें खोलने जाती है और फिर चम्पक के साथ आती है)

चम्पक०—क्या भोजन बनाया ही नहीं ?

चमेली०—बनाती क्या तुम्हारे कलेजे से ? तुम्हारे सिर से ? तुम्हारा तो यह मन्त्र है—

अष्ट प्रहर, दिन रैन, गान गुल्तान उड़ाना।
मजलिस ख़ूब सजाय, रण्डियाँ रोज़ नचाना॥

खाना, पीना, खेलना, कभी न करना सोग ।
झक मारें आठों घड़ी, घर के सारे लोग ॥

चम्पक०—अरे अब मेरे ऐसे लक्षण कहाँ हैं ? नगद नारायण जब तक मेरे घर में रहे तब तक मैंने क्या, तूने भी खूब मौज उड़ायी । एक साड़ी, एक बार पहनकर फिर हाथ से नहीं उठायी । अब दिन डूबा और रात्रि आई । वे दिन होगये बिहारी । सुना ? वे दिन होगए बिहारी । अब तो.........

भबका भारी खीसा खाली ।
चम्पक हुआ कुड़क बङ्गाली ॥

चमेली—तो फिर मुझे भी इजाज़त दो ।

चम्पक०—कैसी ?

चमेली—कहीं जाके पेट भरू, किसी की मजूरी करूँ ।

चम्पक०—नहीं, यह नहीं हो सकता ।

चमेली—क्यों ?

चम्पक०—(मुँह बनाकर) क्यों ? मेरी बोलती मैना मुझ से कहती है क्यों ? मेरी आँखों की पुतली उत्तर देती है क्यों ? यों कि मैं तेरे बिना कैसे जिऊँगा—

तू ही मेरी ज़िन्दगी तू ही मेरा प्रान ।
तू ही मेरे स्वर्ग का जाने का है यान (विमान) ॥

चमेली०—तो मेरे लिए रेशमी साड़ी लाओ, घर में खाने की जिंस भरवाओ, मेरे कुंडल टूटे पड़े हैं उन्हें ठीक कराओ ।

चम्पकक०—अब रेशमी साड़ी न मिले तो मामूली धोती से ही काम चलाओ। खाने की जिंस रोज़ कहीं से मांग लाया करूंगा, उसी को खाना और खिलाना। कुंडल अब न पहनोगी तो क्या हर्ज हो जायगा ?

चमेली०—क्या तुम अब ऐसे दिवालिए हो गये ?

चम्पक०—दिवालिए ? बड़े बूढ़ों की कमाई का घर में जो कुछ अस्बाब था वह भी तो तुम्हारी फ़रमाइशों ने बिकवा दिया। बाहर साख जाती रही, कोई उधार भी नहीं देता। एक काम करो—आज तुम अपना कोई ज़ेवर देदो तो गिरवी रख कर कुछ रुपये लेआऊँ और इस तरह दस पन्द्रह रोज़ रोटी का ख़र्च चलाऊँ।

चमेली०—न मेरे पास तुम्हें देने को ज़ेवर है और न अब मेरी इस घर में गुज़र है।

चम्पक०—(स्वगत) माता विद्या देवी ! तुम्हारे दिए हुए दण्ड से जितना उपकार हुआ, उससे ज्यादा इस समय इस अपनी स्त्री के ऐसे सूखे उत्तरों से मेरा सुधार हुआ। (चमेली से) तुम ज़ेवर नहीं देती हो तो मैं ख़र्च के लिए रुपया कहां से लाऊँ ?

चमेली०—व्यापार करके।

चम्पक०—उसके लिये पूंजी नहीं है।

चमेली०—चोरी करके।

चंपक०—उसमें गिरफ़्तारी का डर है।

चमेली०—भीख माँग के।

चंपक०—उसकी आदत नहीं है।

चमेली०—घास खोद के।

चंपक०—उसके लिए भी मजबूरी है। चंपकलाल अब दोनों हाथों से कोढ़ी है।

(हाथों का कोढ़ दिखाना)

चमेली—हैं! कोढ़ी!! तू कोढ़ी हो गया? दूर दूर, खबरदार मुझे मत छूना।

चंपक०—(स्वगत) माता विद्या देवी, तुम्हारे दिए हुए प्रसाद की यह तीसरी आवृत्ति हुई। (चमेली से हँस कर) कोढ़ी होने से तो मैं ज्यादा खूबसूरत होगया हूँ। काले से गोरा होगया हूँ। कउए से बगला होगया हूँ। कामदेव जैसा मेरा रूप बढ़ता ही जाता है। चांद की तरह चमकता ही जाता है। सारी दुनिया तेल हल्दी आदि मसाले लगा लगा कर गोरे होने का उपाय करती है मैं तो बिना मेहनत किए ही गोरा हो गया हूँ।

चमेली०—चल, चल, तुझ जैसे अभागे के पास रहना मुझे पसन्द नहीं है—

कहां राहु, कहां चाँदनी।
कहां बगला, कहाँ हँसनी॥

चंपक०—(स्वगत) आः ! मैं यह क्या सुन रहा हूं ? पृथ्वी तू यह क्या सुन रही है ? आकाश, तू यह क्या सुन रहा है ? (चमेली से) क्या तू सब बातों में लायक़ और मैं सर से पैर तक नालायक़ ?

चमेली०—हां, तू सब तरह से नालायक़ ।

चम्पक०—कुलटा, व्यभिचारिणी, धिक्कार है तेरे रूप को । थू है तेरी संगत को । हाय ! मैंने तेरे कारण अपने माता पिता का कैसा तिरस्कार किया ! और तूने, राक्षसी तूने, मायाविनी तूने, किस तरह मुझे ज़लील और ख़्वार किया—

हों जिनके पास आंखें, वे तमाशा देखलें मेरा ।
लुगाई के जो चाकर हैं, नतीजा देखलें मेरा ॥

चमेली०—तूहीने तो मुझे बाज़ार की मिठाइयां खिला खिला कर चटोरी बनाया, तू ही ने तो मुझे गाड़ियों में बिठा बिठा कर हवाख़ोर बनाया ।

चंपक०—(चौंक कर) हैं—

चमेली०—हाँ... । मुझे रण्डियों की सी पोशाक किसने पहनाई ? मुझे स्वतन्त्रता किसने सिखाई ?

चम्पक०—मैंने ।

चमेली०—तू ने ?

चम्पक०—हां, मैंने ।

पांचवां दृश्य

काशी (विश्वनाथ)

(श्रीविश्वनाथ की आरती होरही ह)

पुजारीगण--

जय गंगाधर जयहर जयशिव जयगिरिजाधीश शिव जय गिरिजाधीश ।
त्वं माँ पालय नित्यं, त्वं मां पालय नित्यं, कृपया जगदीश ॥
ओं हर हर हर महादेव, शम्भो ।

कैलासे गिरिशिखरे कल्पद्रुमविपिने शिव कल्पद्रुमविपिने ।
गुंजति मधुकरपुञ्जे, गुंजति मधुकरपुञ्जे, कुञ्जवने गहने ॥
ओं हर हर हर महादेव, शम्भो ।

कर्पूरद्युतिगौर पंचाननसहितं, शिव पंचाननसहितं ।
त्रिनयनशशिधरमौलं त्रिनयनशशिधरमौलं, विषधरकण्ठयुतं ॥
ओं हर हर हर महादेव, शम्भो ।

तुष्टय रचयति मालां पन्नगमुपवीतं शिव पन्नगमुपवीतं ।
वामविभागे गिरिजा, वामविभागे गिरिजा, रूपं अतिललितं ॥
ओं हर हर हर महादेव, शम्भो ।

अमृत चरण सरोजं हृदि कमले धृत्वा, शिव हृदि कमले धृत्वा ।
अवलोकयति महेशं, अवलोकयति महेशं, शिवलोकं गत्वा ॥
ओं हर हर हर महादेव, शम्भो ।

(सब का आरती लेना)

शान्तन–श्रवण बेटा, उधर श्रीपतितपावनी गंगा महारानी का स्नान संपूर्ण पापों को दूर करता है और इधर काशीपुरी का दर्शन एवं विश्वनाथ का अर्चन तीनों तापों को हरता है। हमारे कैसे अच्छे भाग्य हैं जो हम यहां आए। तेरी बदौलत ही बेटा, हमने यह महादर्शन पाए–

जहां मुक्ति सदा, जहां भक्तिसदा, जहां शक्ति सदा शिव की विलसे ।
रजरज जहां बोल रही शिव शिव सुरसरि जहां घर घर में हैं बसे ॥
पालक जहाँ अन्नपूर्णा मां, रक्षक जहां भैरव की कुरसी ।
यमदूत न भूल के आये जहां. सो काशी है यह शोक असी ॥

ज्ञान०–

जय जय जय काशीपुरी सब की तारनहार ।
आन पड़े हैं आज तो हम भी तेरे द्वार ॥
तू सब को सुखदात्री त्रिभुवन में विख्यात ।
हम हैं तेरे यात्री, कृपा—दृष्टि हो मात ॥

(आरतीवाले पुजारी, श्रवण को आरती देते हैं)

श्रवण०–(आरती लेकर) अहा हाहाहाहा:–

माता मेरी पार्वती है, पिता मेरे त्रिपुरारि ।
युगल चरण पंकज पर जाऊँ, जन्म जन्म बलिहारि ॥
जय जय, श्रीमाता पिता की जय ।

(अपने माता पिता को साष्टांग दण्डवत करना)

एक पुजारी—(आगे बढ़कर श्रवणकुमार से) अरे लड़के, यह क्या करता है ? श्रीविश्वनाथ के दरबार में श्रीविश्वनाथ को दण्डवत् न करके किसके आगे मत्था टेकता है ?

श्रवण०—महाराज, मैं तो साक्षात् विश्वनाथस्वरूप अपने पिताको और जगदम्बा समान अपनी माता को समझता हूँ । सब से प्रथम इन्हीं को प्रणाम करता हूँ—

पूजन कोई करे शंकर का, पूजन कोई करे गिरजा का ।
कोई रमापति को ध्याता है, ध्यान धरें है कोई रमा का ॥
कोई गजानन, कोई वरानन, शारद कोई, कोई सविता का ।
मुझको तो सब से प्यारा है, पूजन पहले मात पिता का ॥

दूसरा पुजारी—(आगे बढ़ कर) मूर्ख, देवताओं के पूजन से बढ़ कर माता पिता का पूजन समझता है ?

श्रवण०—अपना अपना भाव है, अपना आपना ध्यान ।
मेरे तो साक्षात् हैं, मात पिता भगवान ॥

पहला पुजारी—कौन प्रकार से ? किस शास्त्र के आधार से ?

श्रवण०—अपनी भावना से और अपने विचार से ।

दूसरा पुजारी–बच्चा, यह काशी है। यहां भावना और विचारसे निर्णय नहीं होसकता। कुछ शास्त्र का प्रमाण दे। माता पिता की इतनी ऊँची भक्ति किसी प्राचीन ग्रन्थ से सिद्ध कर।

श्रवण०–शास्त्र की बात तो शास्त्री जानते हैं, परन्तु मैंने भी आप सरीखे महात्माओं के ही मुख से इस प्रकार कहे जाते सुना है कि–

मातरं पितरं चैव साक्षात्प्रत्यक्षदेवते ।
मत्वा गृही निसेवेत सदा सर्वप्रयत्नतः ॥

काशीराज–धन्य, धन्य ।

श्रवण०–और भी सुनिए–

यन्मातापितरौ क्लेशं सहेते संभवे नृणाम् ।
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि ॥

काशीराज–धन्य, धन्य ।

श्रवण०–एक दो और भी सही:–

पिता धर्मः पिता कर्मः पिता हि परमं तपः ।
पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्वदेवताः ॥
पितुरप्यधिका माता गर्भधारणपोषणात् ।
अतो हि त्रिषु लोकेषु नास्ति मातृसमो गुरुः ॥

और सुनाऊँ ?

काशिराज—बस, बस। पुजारियों की शंका का समाधान हुआ, परन्तु इतना और बतादो कि यह किस ऋषि के वाक्य हैं ?

श्रवण०—महाराज, आप काशिराज हैं। आपके यहां तो अखिलभारतवर्षीय पण्डितों का समाज है। मैंने यह वाक्य पण्डितों ही के द्वारा सुने हैं। मनु आदि स्मृतियों में यह सब श्लोक कहे गये हैं।

एक सन्यासी—(आगे बढ़ कर) स्मृतियों के प्रमाण बहुत ज्यादा माननीय नहीं है।

श्रवण०—तो क्या संसार में—आप यह सिद्ध करेंगे कि माता पिता पूजनीय नहीं हैं ? श्रुति कहती है "मातृदेवो भव पितृदेवो भव" और आप की राय में माता पिता विशेष आदरणीय नहीं हैं ? धन्य महाराज ! बलिहारी सन्यासी बाबा !!

शान्त्वन०—बेटा श्रवण, इन श्रीमानों से क्यों इस प्रकार सम्वाद करता है ? शास्त्रार्थ करने में हमेशा विषाद ही बढ़ता है।

श्रवण०—पिता जी, यह विषय ऐसा ही है जिस पर बिना कहे नहीं बनती है। मेरी वाणी नहीं, मेरी आत्मा इस विषय पर इस समय झगड़ती है। (संन्यासी से) संन्यासी जी, आपकी राय में किसका पूजन करना चाहिए ?

संन्यासी—ब्रह्म का।

श्रवण०—किस प्रकार ?

संन्यासी—ध्यान से।

श्रवण०—तर्कना कहती है कि जिसका कोई रूप नहीं है उसका ध्यान नहीं धरा जा सकता।

संन्यासी—अरे, रूप कैसे नहीं है ? यह सम्पूर्ण लोक, प्रकृति राष्ट्र, देश, समाज, सब उसी ब्रह्म का स्वरूप है।

श्रवण०—तो इस लोक, प्रकृति, राष्ट्र, देश आदि का ही पूजन करना चाहिए यही न ?

संन्यासी—हां, परन्तु इन सबको ब्रह्मरूप समझ कर।

श्रवण०—ठीक। निर्णय हो गया। उसी लोक, प्रकृति, राष्ट्र, देश आदि में मेरे यह माता पिता भी हैं। उसी प्रकार मैं इनका भी पूजन करता हूँ। परन्तु विश्वनाथ के समान समझ कर। महात्मा जी, क्षमा कीजिएगा, आप भी:—

वेद पढ़े पर भेद पढ़े नहिं, वाक्य पढ़े पर वाक्य न आया।
अक्षर ही पर जोर दिया, सीखे नहीं अर्थ, अनर्थ ही आया॥
नयनन से देखा न कभी, पर गान सदा निर्गुण का गाया।
हमने तो वह रूप प्रभू का, माता-पिता के रूप में पाया॥

एक पुजारी—हे काशिराज, अब आप अपना मत दीजिये। इन दोनों में कौन निर्बल रहा और किसका पक्ष प्रबल रहा।

काशिराज—मैं तो नाममात्र का काशिराज हूं, सच्चे काशिराज तो (विश्वनाथ की ओर देख कर) वे हैं ।

श्रवण०—तो वे ही निर्णय करेंगे । यदि मैं सच्चा हूं तो मेरे पक्ष का स्वयं भगवान् विश्वनाथ समर्थन करेंगे—

त्रिपुरारि, प्रकट होके चमत्कार दिखाओ ।
निर्बल है या सबल है मेरा पक्ष बताओ ॥
पानी का पानी दूध का प्रभु दूध बनाओ ।
सच्चा हूँ मैं तो टेर पै मेरी चले आओ ॥

(विश्वनाथ का मूर्ति में से प्रकट होना)

विश्वनाथ—निःसन्देह संसार में मातृ-पितृ-भक्ति ईश्वर-भक्ति के समान है । मातृ-पितृ-भक्ति के भीतर ही ईश्वर-भक्ति विद्यमान् है । मेरे भक्तो, मेरे यात्रियो से इस प्रकार झगड़ा मत किया करो । पढ़ लिख कर शान्ति प्राप्त करना चाहिए, अशान्ति मोल मत लिया करो । जाओ 'श्रवण-कुमार' तुम्हारी यात्रा सुफल हुई और इस शास्त्रार्थ में तुम्हारी विजय हुई—

वाक्य तुम्हारे जगत् में, हैं बस मन्त्र समान ।
चरित तुम्हारा विश्व में है आदर्श महान ॥

सब—जय, श्रीकाशीपति विश्वनाथ की जय ।

छठा दृश्य

चेतनदास बाबा का मन्दिर ।

(रामजीदास का प्रवेश)

❀ गाना ❀

रामजी०—

आए दुनिया में हैं हम लुत्फ़ उठाने के लिये ।
सैर करने के लिये खेलने खाने के लिये ॥
रोउनी सूरतें, रोती ही रहेंगी हरदम ।
हमने तो पाया जनम हँसने हँसाने के लिये ॥
और जितना ही किया करते हैं हम दुनिया पर ।
कुछ नहीं मिलता है यां करने कराने के लिये ॥
इसलिये है यही अच्छा कि सदा मस्त रहें ।
फिरते मज़दूर बहुत बोझ उठाने के लिए ॥

चेतमदास बाबा से हमने पूछा—"हमारे जीवन का मुख्य कर्त्तव्य क्या है ? यह तो निश्चित ही है कि एक दिन मृत्यु अवश्य होगी । और मृत्यु होने पर संसार में हमने जो कुछ किया है

वह सब व्यर्थ होजायगा। इसलिए हमें वह कार्य बताया जाय जो अव्यर्थ हो। आत्मा और परमात्मा को अभी तक किसीने प्रत्यक्ष करके नहीं दिखलाया, और न उसकी प्राप्ति का उचित मार्ग ही निर्णय करपाया है। तब यह प्रश्न होता है, कि हमारे जीवन का मुख्य कर्त्तव्य क्या है?" चैतन्य बाबाने कैसा अच्छा उत्तर दिया:-

(गाकर) आगमन जग में हुआ, मौज उड़ाने के लिये।
ज़िन्दगी पाई है आनन्द उठाने के लिये॥

(चेतनदास का प्रवेश)

चेतन०—सटक, नारायण! अरे रामजीदास !

रामजी०—जी, जी, जी, जी, जी गुरू महाराज।

चेतन०—अभी तक क्यों नहीं आई चमेली ?
नरम, नाज़ुक, नुकीली और नवेली।

रामजी०—अब वह नहीं आएगी। उसके इरादे बदल गए हैं, उसकी आंखें बदल गई हैं, उसके रंग ढंग बदल गए हैं।

चेतन०—क्यों ? ऐसा क्यों ? अरे ऐसा क्यों हुआ ? वह नहीं आएगी तो मेरी छाती टुकड़े टुकड़े होजाएगी। हाथ में आया हुआ रत्न कभी नहीं खोना चाहिये। चाहे ठाकुर जी का दर्शन न हो, परन्तु चमेली का दर्शन अवश्य होना चाहिये। जा और उसे जल्दी बुला ला।

रामजी०—(स्वगत) मेरा चैतन्य बाबा कहता है, चाहे ठाकुर जी का दर्शन न हो परन्तु चमेली का अवश्य हो। हाय,

इस गेरुए रँग में कैसी कालिमा भरी हुई है ! (प्रकट) आज मेरी तबीयत ठीक नहीं है । मैं उसे बुलाने नहीं जाऊँगा ।

चेतन०—तेरी तबीयत ठीक न होने की पर्वा नहीं । हमारा दिल चमेली के बिना लगता नहीं । जा, उसे बुला ला । भिक्षा के बहाने जाकर उसे बुला ला । सटक, नारायण ।

रामजी०—उसका पति पहचान गया है, मुझे देखते ही मारने को दौड़ता है । अगर उसने मुझे बांधकर टांग दिया तो कौन छुड़ायगा—मेरा बाबा ?

चेतन०—पर्वा नहीं, चमेली के लिये बंधना तो क्या शूली पै चढ़जाने में भी चिन्ता नहीं ।

रामजी०—किसे ? गुरू को या चेले को ? धनवान् को या भिखारी को ? वाह:—

चेला चढ़जाये सूली पर और मौज उड़ायें गुरू महाराज ।
यह लो अपनी झोली, तूंबी मुझ से होगा नहिं यह काज ॥

चेतन०—अरे, ठहर, ठहर । तेरी मौज का भी प्रबन्ध हो जायगा । गुरू के लिये चमेली—

रामजी०—और चेले के लिये ?

चेतन०—कोई दूसरी चेली ।

रामजी०—तब ठीक है । अच्छा, अब आप पूजन में बैठ

जाइए। मैं शरीर से उसे बुलाने जाता हूँ, आप आत्मा से उसे बुलाइए।

चेतन०—तो आसन लेआ।

(रामजीदास आसन लाकर बिछाता है। चेतनदास उस पर बैठ कर ध्यान लगाता है)

रामजी०—(जाते जाते)...

चेतन से फक्कड़ साधू को सब कुछ मिलता, जो चाहे
संसारी को एक न मिलती और यह दस नारी ब्याहे ॥
भोले जनों के भरमाने को बाबा कैसा सुस्थिर है।
धर्म्म ओट में खोट का सागर चेतनदास का मन्दिर है ॥

(जाना)

चेतन०—(स्वगत)...

फक्कड़ बाबा के लिए, है बस किसकी चाह।
युक्ति और ही है यहां, है और ही सलाह ॥
मालदार कामिनी पै, डाल प्रेम का जाल।
लूट लेंयगे किसी दिन, उसका सारा माल ॥
सटक, नारायण।

(आंख मूंद कर माला जपता है। रामजीदास उसी समय चमेली के साथ आता है)

रामजी०—गुरु महाराज चमेली आई।?

चेतन०—आई ? चमेली आई ? (आसन से उठ कर) सटक,

नारायण। चमेली, तेरे विना मुझे सारा मन्दिर सूना लगता था, सारा संसार उजाड़ दीखता था।

चमेली०—मुझे भी आपके विना, अपना शरीर तक बुरा मालूम होता था। अब मैं एक घड़ी भी आपको नहीं छोड़ूंगी, एक पल भी आपकी सेवा से मुंह न मोड़ूंगी। मैंने, आपकी खातिर आज अपने स्वामी को, अपने सम्बन्धियों को, अपने ग्राम को, अपने स्थान को, सब को छोड़ दिया है। यह देखिये (एक छोटी सी गठरी दिखाती है)

चेतन०—यह क्या है ? वही ? उस रोज़ जो सलाह हुई थी उसकी पूर्ति ?

चमेली—हां वही। मेरे ज़ेवरों की गठरी। और इसके भीतर मैंने अब तक जितनी मोहरें इकट्ठी की थीं, उनकी थैली।

चेतन०—ओहो ! सटक, नारायण। छुपाले, छुपाले। उस बदमाश रामजीदास को न दिखाना।

चमेली—क्यों ? क्या रामजीदास विरोधी होगया है ?

चेतन०—हां, वह अब विरोध करने लगा है। बात बात में बिगड़ने लगा है। आज ही कहता था, मेरे लिए भी एक चेली तजवीज़ करदो। हम क्या चेलियां तजवीज़ करते फिरते हैं ? मुझे अब उसका विश्वास नहीं है। तुम्हारे और हमारे प्रेम का उस पर अच्छा प्रभाव नहीं है।

रामजी०—(स्वगत) यह क्या गुप चुप बातें ह ? अब तक चेला जिस पद का मालिक था अब चेली उस पद की मालिकनी होगई ? एक अधिकारी के अधिकार की आज से एक अधिकारिणी अधिकारिणी होगई ?

चेतन०—बच्चा रामजीदास, जा गउओं को दुहले और चमेली बाई के लिए खीर बनाने की तय्यारी कर।

रामजी०—बहुत अच्छा। (स्वगत) यह दोनों मौज उड़ायें और हम इनकी चाकरी बजायें। दूध दुहें और खीर बनायें। अभी सब बछड़ों को छोड़े देता हूँ कि गइयों का सारा दूध पी जायें—

रखते हैं गुरू जी अगर सीधा क़दम नहीं।
चेला भी अपनी चाल में कुछ उनसे कम नहीं॥

(जाना)

चेतन०—(चमेली से) असल में हमारे तुम्हारे स्नेह व्यवहार को देखकर वह रामजीदास जलता है।

चमेली—फिर उसका उपाय भी क्या हो सकता है ?

चेतन०—उपाय यही होसकता है कि इसको छोड़ दिया जावे, और आज ही डेरा डण्डा यहां से उठाकर दूसरे नगर को कूच किया जावे।

चमेली—दूसरे नगर को चल देने की बात तो मैं भी विचार

रही थी। मेरा पति बड़ा बदमाश है। उसको मेरे और तुम्हारे प्रेम का पता लग जायगा तो वह बड़ा उपद्रव मचायगा। इसलिये चुपके से चल देना ही ठीक है।

चेतन०—ऐसा ही करेंगे। तुम देखना जिस शहर में हम जायेंगे, वहीं अपना प्रभाव जमायेंगे। बाबा वहां भी अपना एक मन्दिर बनायेंगे, वहां भी सेवक और सेवकनी आयेंगे। समझी? नटक नारायण!

चमेली—तो आज ही चलेंगे न?

चेतन०—आज ही। और सुनो, दूसरे नगर में चलकर तुम्हारा नाम देवी मैया रक्खेंगे। खूब भभूत लगाना, जटायें बढ़ाना। ऐसा आडम्बर बनाना कि बड़े बड़े महापुरुष तुम्हारे चरणों में लोटने लगजायें।

चमेली—और नाना प्रकार की भेंट चढ़ायें। देवी मैया उन्हें इस प्रकार अन्धा बनायें और अपने देवता बाबा पै (चेतन दास के गले में हाथ डाल कर) बलिहारी जायें:—

इस सुन्दर मूरत के कारण घर बार छोड़ कर आई हूं।
इन मोहन के इन नयनन पै बेदाम मैं आज बिकाई हूं॥

चेतन०—मैं भी सब कुछ खो बैठा हूँ इन सुन्दर सुन्दर गालों पर।
इन नयनों पर इन सयनों पर इन काले काले बालों पर॥
अक्षराचार्य ने अक्षरों से जब "सुन्दर" वाक्य बनाया है।
विधना ने सृष्टि के साँचे में तब यह स्वरूप ढलवाया है॥

अच्छा, अब रसोईघर में जाकर अपने हाथों की बनाई हुई खीर पूरी आज गुरू जी को खिलाओ, और रामजीदास को यहां हमारे पास पठिआओ। हम अभी उसे यहां से निकालते हैं। पल मात्र में उस से सम्बन्ध विच्छेद किए डालते हैं।

(चमेली का जाना)

चेतन०–

जबतक रहती मौज है, तबतक रखते प्रीत।
परदेशी और फांकड़े, हुए किसी के मीत ?

(रामजीदास का प्रवेश)

रामजी०–(स्वगत)...

चली है पुरवा उठे हैं बदरा, पपीहा पी पी सुना रहा है।
गए वे फागुन के दिन रँगीले, सितार सावन बजा रहा है॥

चेतन०–अरे रामजीदास !

रामजी०–जी महाराज।

चेतन०–अब अपना झोला झाँकड़ा उठा, और अभी हमारे मन्दिर में से निकल जा।

रामजी०–हैं ! यह आपने कैसा हुक्म दिया ? आपने तो मुझे अपनी गद्दी देने का वायदा किया था। एकाएक चित्त क्यों फेर लिया ?

पसन्द आगई इस क़दर क्या चमेली ?
विराजेगी मन्दिर में वह ही अकेली ?

गुरू और चेले की बातें थीं कल तक–
मगर वढ़गई आज चेले से चेली ॥

चेतन०–अरे कैसा गुरू और कैसा चेला ? हम अपने बाप तक के सगे नहीं हुए तो तू क्या चीज़ है ? हमारे बाप हमें खर्च के लिये पैसे नहीं दिया करते थे। एक रोज़ हमें जो लटक उठी तो उनकी सब जमा पूंजी हथियाकर घर से चल खड़े हुए। ऐसे अन्तर्धान हुए कि फिर सूरत न दिखाई। काशी में जाकर एक बाबा जी के चेले होगये और अनेक नगरों की परिक्रमा लगाई। समझा वे सौदाई ? सटक, नारायण।

रामजी०–महाराज, मैं अपने घर को, अपने पिता को, सब को छोड़कर तुम्हारी शरण में आया। तुमने न कुछ मन्त्र सिखाया न कोई शास्त्र पढ़ाया। अब तक तुम्हारी संगत में मैंने गांजा सुलफा ही उड़ाया, चिमटा ही बजाया। अब जब कि मैंने तुम से जरा स्नेह बढ़ाया तो तुम ने इस तरह मुझे धतियाया ? वाह गुरूजी, वाह !!!

चेतन०–अरे, हमारे पास यदि मन्त्र तन्त्र होते तो हम ऐसा आडम्बर बनाकर बस्ती ही में क्यों रहते ? कहीं बनों में न विचरते ?

जो हम होते ईश्वरवादी तो क्यों घर घर मांगते भीख ?
हमने तो सीखी है केवल पेट पालने की ही सीख ॥

सटक, नारायण।

रामजी०—हाय:—

इह लोक मिटा, परलोक मिटा, न इधर का रहा न उधर का रहा ।
न पिता का रहा, न गुरू का रहा, न इधर का रहा न उधर का रहा ॥

अच्छा महाराज, आप मुझे विदा करते हैं तो अपना कुछ प्रसाद देदीजिये । आखिर तो मैं आपका सेवक ही हूँ ।

चेतन०—प्रसाद उसाद यहाँ कुछ नहीं है । अच्छा, ठाकुर जी की मूर्ति को लेजा, उसकी सेवा करना । हमारा तो आज चमेली के साथ यहाँ से चले जाने का विचार है । हमें हमारा ठाकुर मिल गया । समझा ? सटक नारायण ।

रामजी०—(स्वगत) सुन रही है भारत माता ? तेरी गोदी का यह साधु वेश धारी दुरात्मा क्या कह रहा है ? पराई स्त्री को उसके पति से अलहदा करके—भगाए लिए जाता है और अपना ठाकुर बताता है ! ऐसे मूर्खों ने धर्म की नौका को डुबोया है । और ऐसे ही नर–पिशाचों ने सच्चे साधुओं के बाने को भी कलंक लगाया है:—

कहते हैं जिनको साधु हम, उनकी कथा कुछ और है ।
वह योग, वह वैराग्य, वह आराधना कुछ और है ॥
वे पारिजातक पुष्प हैं, यह नीच कीट समान है ।
वह साधुता कुछ और है, यह धूर्त्तता कुछ और है ॥

चेतन०—क्यों बे, अब खड़ा २ क्या सोच रहा है ? जाता क्यों नहीं ? सटक, नारायण ।

रामजी०—अभी कैसे जाऊँगा। मैंने सब तेरी चालाकी जान ली है, चमेली को भी इन चालाकियों से खबरदार करके जाऊँगा। धूर्त्त! तू अगर गुरू है तो मैं भी तेरा चेला हूँ। तेरा भण्डाफोड़ कर जाऊँगा, तेरा षड्-यन्त्र तोड़ कर जाऊँगा। चमेली बाई, चमेली बाई।

चेतन०—खड़ा तो रह बदमाश। अन्दर जाने की जरूरत नहीं है। कुशल चाहता है तो अभी मन्दिर में से निकल जा, नहीं तो मारे दण्डों के तेरा सिर तोड़ दूंगा। चमेली! चमेली!! जरा लट्ठ तो ले आना।

चमेली—क्या है? क्या है? (रामजीदास से) अरे रामजी दास, तूने यह क्या किया? गइयों का सब दूध बछड़ों को पिला दिया? अब खीर काहेकी होगी? मटकों में पानी भी नहीं है, नहीं तो सिर्फ चांवल ही चढ़ा देती।

रामजी०—अब मैं पानी वानी कुछ नहीं भरूँगा। यह सब काम आज से तेरा है। मैंने तो इस पापी की पोल देखली—

"लोभी गुरू लालची चेला, दोनों नरक में ठेलम ठेला"॥

मैंने बहुत सेवा की, धोती धोई, पानी भरा, रसोई बनाई, चिलम जगाई अन्त में इस धूर्त्त ने मेरे साथ धूर्त्तता ही दिखाई? आज पूरी तरह खुली है इसकी साधुताई। तुमसे भी मैं कहे देता हूँ चमेली, याद रखना यह पापी तेरे साथ भी किसी

दिन विश्वासघात करेगा। जब तक तेरे पास माल मता रहेगा तभी तक तुझसे बात करेगा। जब तेरी पूंजी निबड़ जायगी तब इसकी प्रीति भी पलट जायगी। समझी ?

कितना ही सांप को दूध मिले लेकिन वह ज़हर ही उगलेगा।
गर दाँत सलामत हैं उसके तो दांव पै अपने डस लेगा॥

चेतन०—बस, बस, पाजी, बेईमान।—चमेली ! लगा तो बद्‌माश की खोपड़ी पर लट्ठ !

रामजी०—खबरदार लट्ठ मंगाने की ज़रूरत नहीं है। मैं आप ही जा रहा हूँ। ऐसी सेवकाई को धिक्कार है। ऐसी साधुताई पर लाख २ फिटकार है। मैंने जितनी तेरी सेवा की उसका सौवाँ हिस्सा भी अपने पिता की करता तो कल्याण हो जाता—

जिस देश में ऐसे गुण्डों को—भर पेट पुजापा आता है।
वह देश और वह जन-समाज क्यों नहीं रसातल जाता है॥
इस रोग की जाति-वैद्यों में होती तयार माजून नहीं।
ऐसों के लिए, राज में भी बनता कोई क़ानून नहीं॥

(जाना)

चेतन०—चमेली, संभालो अब झोली और गठरिया। आज ही छोड़ देना है यह नगरिया। अण्टी में नारायण, साथ में तुम जैसी चान्द्रायण, बस बनी बनाई रसायन। सटक, नारायण।

(प्रस्थान)

—०—

सातवां दृश्य

जंगल ।

[एक पत्थर की चट्टान पर शिर झुकाये हुए विद्या बैठी हुई है]

❀ गाना ❀

विद्या-

प्राणनाथ के विरह में, ऐसी जानो मोय ।
जैसे वर्षा के बिना, खेती ऊजड़ होय ॥

पिया न मिलत, जियरा जरत नारी है हारी ।
मीन जल बिन, फणी मणि बिन भारी दुखारी ॥
मौत न आये, प्राण अकुलाये, जाय जाय जी
जरो जाय हाय, हाय कुछ न भाय, पति वियोग
में प्राण गवाऊं, सती होजाऊं । पिया न मिलत०।

प्राणेश, तुम्हारी प्राणदासी ,तुम्हें ढूंढते ढूंढते थक गई। देश-विदेश, बस्ती-बन, सागर-पहाड़,सभी स्थानों में खोज करली, परन्तु वह छवि देखने को न मिली। अब लाचार होकर, सूर्य्य

चन्द्र को साक्षी देकर, इस पवित्र वन की पवित्र भूमि में काष्टार्जन करती हूँ और अग्नि द्वारा यह देह आपको अर्पण करती हूं—

अब तक दृष्टान्त सुना था दीपक पै पतंग के जलने का ।
साक्षात् मिला अब समय मुझे जीवन न्यौछावर करने का ॥

तयार होगई, चिता तयार होगई । अब अग्नि कहां से लाऊँ ? कांष्ठ, तेरे भीतर तो स्वयं अग्नि रहती है । तू मुझ दुःखिनी पर दया करके उसे प्रकट करदे । हैं ! तू नहीं सुनता ? अच्छा वह सामने पत्थरों के ढेर के ढेर पड़े हुए हैं उन्हीं से कहूँ । हे पाषाणदेव, सुनती हूँ कि तुम्हारी छाती के भीतर भी ज्वाला रहती है । यह दीन बाला तुमसे उसकी भिक्षा मांगती है । नहीं देता, पत्थर भी आंच नहीं देता । पत्थर तो स्वयं ही पत्थर है, मेरी गिड़-गिड़ाहट से वह नहीं चमकेगा । तब, तब, (आकाश को देखकर) चमकते हुए सितारो, तुम्हीं मेरी इच्छा पूरी करदो । पड़ोसी नहीं सुनते तो इतनी दूर रहनेवाले तारे कैसे कृपा करेंगे । मत दो, कोई मुझे अग्नि मत दो । कोई मेरी पुकार मत सुनो । कोई मेरी इच्छा पूरी मत करो । हे प्राणनाथ, अब आपकी मानसिक पूजा करती हूँ । आप ही इस समय मेरे सहायी होंगे । सोते जागते सदैव जो सुखदायी होते थे वही अब भी सुखदायी होंगे—

पतिव्रत जाग चेतन कर चिता, पैदा लपट कर दे ।
सती के सत, जो तुझमें बल है तो ज्वाला करदे ॥

(अचानक चिता का भवकना और अग्निदेव का प्रकट होना)

अग्निदेव--सती पुत्री, तेरा कल्याण हो। तू बिना मृत्यु के क्यों मर रही है ?

विद्या०--हैं। यह मैं क्या देख रही हूँ ! महोदय, आप कौन हैं ?

अग्नि०--अग्नि के देवता। तेरे सत ने हमें यहां बुलाया, तेरा पतिव्रत धर्म हमें इस समय यहां खींच लाया। बोल क्या चाहती है ?

विद्या०--देव मैं अपने स्वामी के वियोग में मरना चाहती हूँ। जैसे सत्य के बिना धर्म, पत्र के बिना वृक्ष, ज्योति के बिना नेत्र, शशि के बिना रजनी, दीपक के बिना स्थान सूना लगता है, वैसे ही मुझे अपने स्वामी के विना सारा संसार तुच्छ भासता है।

अग्नि०--पुत्री, तेरा तीर्थार्थी स्वामी सकुशल है। तेरे सास ससुर सानन्द हैं। शीघ्र ही तुझे तेरा स्वामी फिर मिल जायगा। तब तक तू उसके नाम की माला फिरा। अपने घर में रहकर शास्त्रानुसार देव-पूजन कर। संसार की बहुत सी स्त्रियाँ स्वामी के वियोग का कष्ट सहन करते हुए जीवन विताया करती हैं। तेरी तरह घबराकर चिता में जलने के लिये नहीं आया करतीं।

विद्या०--महाराज, स्वामी के वियोग में सती नारी का जीवन व्यर्थ है। जैसे शरीर से परछाईं, अग्नि से उष्णता, चन्दन से सुगन्धि और भगवान् से भक्त दूर नहीं हो सकता तैसे ही सती

नारी अपने स्वामी का वियोग सहन नहीं कर सकती। स्त्री का जीवन स्वामी ही है, भूषण वसन स्वामी ही है, तन, मन, धन, जन, स्वामी ही है, यहाँ तक कि नारायण भी स्वामी ही है:—

कृपा करके स्वामी से मुझ को, मिला दो।
मेरे मोद का मार्ग मुझको दिखादो॥
जो तुम देवता हो जो तुम में है शक्ती।
तो हैं वे कहां पर मुझे तुम बतादो॥
नहीं तो हो मृतकों में बस साख मेरी।
मिलेगी यहां पर तुम्हें राख मेरी॥

अग्नि०—धन्य पुत्री, धन्य। तेरी असीम पति-भक्ति को देखकर मैं अतीव प्रसन्न हुआ। जैसे शंकर को पार्वती, विष्णु को लक्ष्मी, इन्द्र को शची, ब्रह्मा को ब्रह्माणी मिली है, वैसे ही श्रवण-कुमार को सती विद्यादेवी की प्राप्ति हुई है। यह मर्त्यलोक बड़ा उत्तम लोक है, जिसकी भूमि पर देवता लोग भी अवतार लेने की इच्छा रखते हैं। यहां मनुष्य जन्म पाकर जो स्त्री और पुरुष अपने धर्म्म कर्म्म को नहीं जानते वे पशु के समान हैं। सती, मैं तेरे पातिव्रत् धर्म के प्रभावको देख कर तुझे सादर शीश झुकाता हूँ, और अभी अपनी शक्ति द्वारा तेरे स्वामी के पास तुझे पहुँ-चाता हूँ:—

सती देवियों में हुई, अब से तेरी रेख।
जा, और बदरी-धाम में, अपने पति को देख॥

(अग्निदेव का चिता के सहित अन्तर्ध्यान होना, दृश्य का बदलना)

—०—

आठवां दृश्य

(श्री बदरीनारायण)

[भगवान् की आरती होरही है, शान्त्वन ज्ञानवती के साथ श्रवण तथा अन्य पुजारी यात्रीगण खड़े हैं]

पुजारी, यात्रीगण–

पवन मन्द, सुगन्ध, शीतल, हेम-मन्दिर शोभितम् ।
निकट गंगा वहत निर्मल बदरीनाथ विश्वम्भरम् ।।
शेष सुमिरन करत निश दिन, धरत ध्यान महेश्वरम् ।
वेद ब्रह्मा करत स्तुति, बदरीनाथ विश्वम्भरम् ।।

जय, श्री बदरीविशाल की जय ।

विद्या०–(प्रकट होकर, और श्रवण के चरणों में गिरकर) जय श्रीस्वामीनारायण की जय ।

श्रवण०–हैं ! (अपने हाथों से उठाकर) विद्यादेवी, तुम यहां कैसी ?

विद्या०–जहां नाथ वहीं प्राण । जहां प्राणनाथ वहीं चरण-दासी ।

शान्त्वन–हैं ! यह कौन बोल रही है ? विद्यादेवी ?

ज्ञानवती–बहू ? बेटी ?

विद्या०–हाँ माता जी, मैं प्रणाम करती हूँ । (शान्त्वन से) पिताजी, मैं मत्था टेकती हूँ ।

शान्त्वन और ज्ञानवती—कल्याण हो। यश कीर्ति की वृद्धि हो।

ज्ञानवती—बेटी, तू यहां किस तरह अचानक आगई।

विद्या०—एक दैवी शक्ति यहां तक पहुँचागई। अपनी वह सब कथा फुर्सत में सुनाऊँगी। इस समय भगवान् की आरती लीजिये।

(एक पुजारी का आरती देना)

शान्त्वन—बेटा श्रवण, इस बदरीधाम की बड़ी महिमा है। जो जन सच्ची श्रद्धा और सच्चे विश्वास के साथ एक बार यहां भगवान् बदरीनारायण के दर्शन कर जाते हैं वे निःसन्देह संसार-सागर से तर जाते हैं:—

नर—नारायण का यह धाम है सदा मोक्ष का दाता।
प्रेम सहित जो यात्रा करता वह चारों फल पाता॥
स्वर्गलोक को इसी भूमि से मार्ग है सीधा जाता।
सात सीढ़ियां हों समाप्त तब, ओंकार दिखलाता॥

श्रवण०—(सामने बरफ़ गिरता हुआ देखकर) पिता जी, यहां पाला बहुत पड़ता है। आपको जाड़ा तो नहीं लगता है?

शान्त्वन—नहीं जाड़ा काहे का! यहां पाला तो अवश्य पड़ता है, परन्तु भगवान् की कृपा से हमें इस समय जाड़ा नहीं लगता है। बेटा जिस प्रकार उपवास का संकल्प करने पर क्षुधा आदि की बाधा नहीं सताती उसी प्रकार यात्री के शीतोष्णता की अनुभावना पास नहीं आती।

ज्ञानवती—बेटा श्रवण, तेरी बदौलत हमने सब तीर्थों की यात्रा करली, भगवान् ने हमारे पापों की सब कालिमा हरली। अब इन चक्षुओं में चांदना आने की प्रतीक्षा है सो वह भी पूर्ण होही जायगी। हमें भरोसा है।

शान्त्वन—बेटा, जिस प्रकार तूने त्रिवेणी का जल हमारी आंखों से लगाया, श्री काशी विश्वनाथ की जलहरी का जल हमारी आँखों से लगाया, उसी प्रकार यहां उत्तराखण्ड का पवित्र नीर भी हमारी आंखों से लगादे।

ज्ञानवती—हां, किसी ऊँचे स्थान से एक झारी भर कर लादे।

विद्या०—(श्रवण से) स्वामी, दासी के होते हुए आप झारी भरने नहीं जायँगे। यह पवित्र चाकरी मेरे दोनों हाथ बजायेंगे।

श्रवण०—प्रिये पहाड़ों पर चढ़ना तुम्हें नहीं आता है। फिर आज बरफ़ भी चारों ओर बहुत दिखलाता है। मेरी आज्ञा नहीं है कि तुम जाओ और ऐसे दुर्गम स्थान से जल लाओ।

विद्या०—आज्ञा आपको देनी ही पड़ेगी। चेरी के होते हुये आपको यह चाकरी नहीं करनी पड़ेगी,

(लोटा उठाती है)

श्रवण०—जाती तो है तू प्राण प्रिये, पर अपनी हठ से जाती है!
तेरे बरियायी जाने से, तबियत मेरी घबराती है!

विद्या०—चिन्ता न करें कुछ आप मेरी, मैं अभी यह सेवा करती हूँ।
वह देखो ऊपर, पानी है, बस वहीं से झारी भरती हूँ॥

(लोटा लेकर पहाड़ पर चढ़ती है)

शान्त्वन बेटा, क्या विद्या को जल लाने भेजा ?

श्रवण०—मैंने तो नहीं भेजा, वह आप ही गई ।

ज्ञानवती—अपने होते वह अपने स्वामी को कोई काम नहीं करने देती । धन्य, बहू भी हो तो ऐसी ही हो ।

(विद्या ऊपर पहुंच कर पानी लोटे में भरती है)

शान्त्वन—परन्तु न जाने क्यों मेरा मन मलीन होरहा है ।

ज्ञानवती—मेरे भी चित्त में अस्थिरता है ।

श्रवण०—(आप ही आप) अचानक मेरे अङ्ग का वाम भाग क्यों धड़का ? हैं, बाँयां नेत्र फड़का ? विधाता यह किस अमङ्गल की सूचना है ? क्या होना है ?

(लौटती समय विद्या बर्फ़ में गलती है)

विद्या०—हा प्राणनाथ ! हा माता पिता ! इस बरफ़ में देह गलती है, तुम्हारी दासी चलती है ।

श्रवण०—(घबराकर) अरे रे यह क्या ? माता जी, पिता जी, सती बर्फ़ में गली जाती है ! उसका अन्तकाल आपहुंचा । हे भगवन् ! हे बदरीनारायण !

शान्त्वन—क्या हमारी पुत्र-वधू बरफ़ में गली ? हे प्रभो, यह कैसी बिजली गिरी !

ज्ञान०—विद्या की ऐसी दशा ? हे भगवन्, यह क्या हुआ !

विद्या०—(गलते २)

अंग अंग गलने लगे, शिथिल शरीर तमाम ।
स्वामी मेरा लीजिये, अन्तिम बार प्रणाम ॥
बदरीनारायण प्रभो, विनय करो स्वीकार ।
जन्म, जन्म, मुझको मिले, यही मेरा भरतार ॥

(श्री बदरीनारायण का प्रकट होना)

बदरी०—एवमस्तु ! पुत्री, तेरी पति-सेवा से मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ । तू स्वर्ग को प्राप्त होगी ।

विद्या०—देव, मैंने ऐसा कौनसा अपराध किया है जिस से इस हिमालय में, आज कुसमय मेरा शरीर गलता है ?

बदरी०—अभी तूने अपने पति की आज्ञा का उल्लंघन किया है । पति-इच्छा के विरुद्ध अपनी हठ से तू जल भरने आई, उसी की तूने सज़ा पाई ।

विद्या०—अचानक थोड़ी सी भूल के लिये जब मुझे ऐसी शिक्षा मिली, तो जो स्त्रियां अपने स्वामी के प्रतिकूल चलती हैं उनकी कैसी दशा होती होगी ? देव, अब मेरी प्रार्थना है कि मुझे स्वर्ग में अपने स्वामी की सेवा मिले:—

अर्थ न धर्म्म न काम चाहती नहीं मोक्ष की प्यासी ।
जहां जहां भी रहूँ, रहूँ बस, स्वामि-चरण की दासी ।।
जय, पति-देव की जय ।

(गलजाना)

श्रवण०—हा सती का जीवन समाप्त हुआ ! यवनिका पात हुआ !

शान्तवन०—(क्रोध से) यह कैसा अन्धेर है ? यह कैसा आघात है ? हे बदरीनारायण, मेरा यह निवेदन है कि इस पवित्र स्थान में विद्या जैसी उत्तम सती की अकाल मृत्यु नहीं होनी चाहिये ।

बदरी०—ऋषि शान्तवन, धर्म्मस्थान अथवा देवभूमि पर जिसकी मृत्यु होती है वह आत्मा बड़ी भाग्यशाली समझी जाती है । देवस्थान पर होनेवाली मृत्यु अकाल मृत्यु नहीं कही जाती है । कैसी ही अधम, पापपूर्ण और नीच प्रकृति की आत्मा हो, तीर्थस्थान पर मृत्यु होने से स्वर्गलोक पाती है । फिर विद्या की क्या बात ? वह एक स्त्री-रत्न है । वह सदेह स्वर्ग जायगी । और स्वर्ग में भी बड़ा अच्छा स्थान पायगी—

तुम्हारी यात्रा पूरी हुई, जाओ अयोध्या को ।
इधर हम भेजते हैं स्वर्ग में सतवन्ति विद्या को ॥

(विद्या का विमान में विराजमान होकर आकाश की ओर जाते हुए दिखाई देना, पुष्प-वृष्टि के साथ साथ यवनिका पात होना ।)

ड्राप-सीन





॥ ॐ ॥

तीसरा अङ्क

पहला दृश्य



जंगल का रास्ता ।

(चेतनदास का प्रवेश)

चेतन०—सटक, नारायण ! मैं जैसा गुरू था, वैसी ही मुझे चेली भी मिलनी चाहिये थी। परन्तु चमेली तो मुझ से चार हाथ चलती हुई निकली। जल की भीजी लकड़ी भीतर से पजलती हुई निकली। जब देखो तब नया नया स्वांग बनाती है, नये नये नवयुवक साधुओं से आंख लड़ाती है:—

माल मसाला साफ़ हुआ है, पास रही नहीं पाई ।
चेली तो गुरुआइन निकली, करदी मेरी सफ़ाई ॥

(चमेली का प्रवेश)

चमेली—हूँ अलबेली सुघर नवेली, फूली हुई चमेली ।
चन्द्रवदन, मन हरन सुन्दरी, चेतनदास की चेली ॥

महाराज, आज तो पच्चीस रुपये दो, अपनी ज़ागिया साड़ी में बेल लगाऊँगी।

चेतन०—चल दूर खड़ी रह। अब हमारे पास कुछ नहीं है। जो कुछ माल मता था, सब तूने खा डाला।

चमेली०—मैंने? या तूने? जो कुछ मैं अपने घर से टूम छल्ला लाई थी सब उड़ा डाला।

चेतन०—मटियाली मखमली रज़ाई किसने बनवाई थी।

चमेली—मैंने तो एक रज़ाई ही बनवाई, परन्तु यह सवा २ रुपये की मलाई एक एक समय में किसने उड़ाई थी? जो कुछ मेरे पास धन था सब छै सात महीने में चाटा और अब बातें बनाता है मूण्डी काटा!

चेतन०—चल रण्डी, किसे आंखें दिखाती है? और किसे मूण्डी काटा बनाती है?

माल उड़ाके मुफ़लिस करके बना दिया बाबा जी।
नहीं जानता था मैं, निकलेगी, तू ऐसी पाजी॥
जब तक बाबा मालदार था, तब तक हांजी हांजी।
खाली झोली देख के ठगनी, अब कहती है नाजी॥
ससुरी अब कहती है नाजी।

चमेली—अपने भाग्य को नहीं सराहाता, कि मैं एक रानी जैसी सुन्दरी होकर तेरी सेवा में आई। अपने पति और घर को झाड़ू लगाई।

चेतन० रहने दे माई ! रहने दे माई !!

चमेली–हैं, अब माई ! जब मुझे भिखारिनी बना दिया तब कहता है माई ?

चेतन०–अरे माई कहना तो हम जैसे साधुओं का स्वभाव है। मुंह से माई दादी कह देने में भी क्या विगाड़ या बनाव है ?

चमेली–हाय, धूर्त्त साधू ! अब मैंने तेरे रूप को पहचाना । रामजीदास ने मुझे चलते समय जो उपदेश दिया था अब मैंने उस उपदेश के अनुसार तेरी साधुताई को जाना । भोली भामा और सीधे सादे बालकों को भरमानेवाले ठग, तुझे धिक्कार है । हाय, मैं बड़ी पापिनी हूं ! जितनी मैंने तेरी गुलामगीरी उठाई, उतनी अगर अपने स्वामी की सेवा करती तो मेरा कल्याण हो जाता ।

चेतन०–चल, चल जारिनी, मैं अभी तुझे ठीक किये देता हूँ । कहां गई मेरी छुरी ! (कपड़ों में से छुरी निकाल कर) हराम-जादी की नाक काटे लेता हूं । (नाक काटना चाहता है)

चमेली–इस छुरी से ? इस छुरी से ? (चेतनदास के हाथ से छुरी छीन लेती है) नाक काटेगा ? दुष्ट, पातकी, मेरी तो नाक बिना काटे ही कट गई, परन्तु तेरी गर्दन बिना इस छुरी के नीचेको नहीं झुकेगी:—

ले देख प्रकट आज तेरा पाप हुआ है ।
लेने के वास्ते—तुझे यमदूत खड़ा है ।।

अब यह छुरी है और वह नापाक गला है ।
होता है वही जो तेरी क़िस्मतका लिखा है॥
चण्डाल तेरे पाप का परिणाम है यही ।
देखो बुरेका आख़िरी अंजाम है यही ॥

(छुरी से चेतनदास का गला काटना)

चेतन०—(मरते मरते) हाय, मैं मरा ! मैं मरा ! (समाप्त)

चमेली०—(स्वगत) हैं ! खून होगया ? यह मैंने क्या किया ? चमेली, राजा के सिपाही अभी तुझे पकड़ कर लेजायेंगे और शूली पर लटकायेंगे। इस वास्ते तू भी यहीं समाप्त हो जा ! जीकर क्या करेगी ? स्वामी, मुझ कुलटा को क्षमा करना । हैं ? हैं ? वह क्या है ? मेरे पाप भयावनी सूरतें दिखाकर मुझे डरा रहे हैं । नरक के पिशाच मुंह फाड़ २ कर मेरी ओर निहार रहे हैं। हाय, अभिमानिनी, तूने अपना लोक परलोक सब नष्ट कर दिया। थू है तुझ पर ! धिक्कार है तुझ पर ! संसार में पापों का बदला लगे हाथ है। बुराई और बुराई का फल साथ साथ है ।

(छुरी से आत्महत्या करते हुए)

जहाँ उबटन थे, मक्खी अब वहाँ पर भिनभिनायेगी ।
बुरों की लाश पर अब चील मंडलाने को आयेगी ॥
घृणा के साथ, दुनिया, पापियों पर थुकथुकायेगी ।
जहां पापी गया वह, बस वहीं पापिन यह जायेगी ॥

(आत्मघात और मृत्यु)

—०—

दूसरा दृश्य

(रामजीदास का प्रवेश)

रामजी०—(स्वगत) सारा शहर छान डाला, परन्तु पिताजी के दर्शन नहीं हुए। हाय पिता ! पिता !!

(दूसरी ओर से बेचरदास का प्रवेश)

बेचर०—(स्वगत) एक बार फिर चेतनदास के मन्दिर में बेटे से मिलने गया, परन्तु अब के तो वहां कोई भी नहीं मिला। हाय, बेटा ! बेटा !!

रामजी०—(स्वगत) पिता, दर्शन जो अब पाऊं तो शिर पैरों में डालूं मैं।

बेचर०—(स्वगत) जो अब के देखलूं बेटा तो छाती से लगालूं मैं ॥

रामजी०—(स्वगत) कहाँ यह भाग्य हैं, मेरे जो फिर दर्शन तुम्हारा हो।

बेचर०—(स्वगत) कहां तक़दीर है ऐसी जो फिर सन्मुख पियारा हो ॥

रामजी०—(सामने देखकर) हैं,यह सामने कौन बोल रहा है ?

बेचर०—(रामजीदास को देखकर) हैं, यह सामने कौन खड़ा है ? वही रूप, वही रंग, वही क़द, वही छवि, क्या मेरा बेटा यही है ? पुकारूं तो सही, बेटा रामजीदास !

रामजी०—(पिता को पहचान कर) कौन, मेरा पालनहार ! पोषणहार ! रक्षणहार ! पिता ! (चरणों में गिरकर) पिता जी, प्रणाम ।

बेचर०—आ, मेरे लाल, मेरे बच्चे, मेरे कलेजे से लगजा ।

रामजी०—(पिता के हृदय से लगने के पश्चात्) धन्य हैं मेरे भाग्य जो फिर मुझे आपका दर्शन हुआ । बलिहारी उस पितृ-स्नेह की, जो मेरे बिना, मेरी खोज में, बन बन मारा मारा फिरा । पिता जी, मैं अपने अपराधों की क्षमा चाहता हूँ, उस ढोंगी साधू ने दूध की मक्खी के समान मुझे अपने मन्दिर में से निकाल दिया । निराधार होकर आपको ढूंढ रहा था ।

बेचर०—मैं तो पहले ही जानता था कि उस ठग साधु की संगत में तू अच्छा फल नहीं पायेगा । अच्छा, अब घर पै चल । बालक माता पिता का प्रेम भूल जाता है, परन्तु माता पिता का वात्सल्य-स्नेह कभी नहीं छूटता । अब तक जो कुछ हुआ वह भी ठीक ही हुआ । तुझे शिक्षा मिली । अब कभी धोका नहीं खायगा ।

रामजी०—सच है, माता पिता के समान इस त्रिभुवन-मंडल में दूसरा कोई उपकार करनेवाला नहीं है । ईश्वर का ही स्वरूप माता-पिता को समझना चाहिये । ईश्वर निराकार है और माता पिता साकार हैं ।

बेचर०—अब तुझे मालूम हुआ कि वह साधू कैसा लुच्चा था?

रामजी०—पूरा सोलह आना—

नादान था जो फंस गया मैं उसके जाल में ।
आंखें खुलीं तो आगया मैं अपने हाल में ॥
माता-पिता ही सब से अधिक पूजनीय हैं ।
इन से बड़ा नहीं कोई मेरे ख़याल में ॥

❀ गाना ❀



अब तो भजले नाम हरीका, मनुआं, तजदे खोटेकाम ।
तजदे खोटे काम, मनुआं तजदे खोटे काम ॥
नरतन पाकर पाप कमाया, जीवन सारा वृथा गँवाया,
आंख खुली तो देखा हम ने, सच्चा है हरिनाम ॥
दुनिया है धोखे की टट्टी, आख़िर है मिट्टी की मिट्टी,
सच्चे सुखका देनेवाला वही है "राधेश्याम" ॥

(दोनों का जाना)

—०—

तीसरा दृश्य



नरक

(चेतनदास और चमेली को भयंकर मूर्तिवाले यमदूत नाना त्रास देते हैं)

चेतन०—मुझे न मारो ।

चमेली—मेरे शिर पै आरा न चलाओ ।

चेतन०—हाय, इस सजा की पहले खबर नहीं थी !

चमेली—पापिनी, अपने जीवन में पाप परिणाम को नहीं जानती थी !

चेतन०—थूको हम पर दुनिया वालो—
चमेली—घृणा करो हम से सब लोग !
चेतन०—दशा हमारी से शिक्षा लो—
चमेली—देखो यह पापों का भोग ।

(यमदूत फिर त्रास देते हैं, दोनों बुरी तरह चीखते हैं और चिल्लाते हैं)

—०—

चौथा दृश्य

रास्ता

(भानुशंकर और लक्ष्मी का प्रवेश)

भानु०—संसार का सम्पूर्ण सौख्य नष्ट होगया। पुत्रसुख की लालसा में हमने अपार कष्ट उठाया। जब ईश्वर ने पुत्र का सुख दिखाया उस समय हर्ष से मैं बावला बन गया था। पाल-पोष के पुत्र को बड़ा किया। मजूरियां कर कर के मकान बनवाया। पुत्र को प्रसन्न रखने के लिये कुछ भी उठा नहीं रक्खा। सन्दूकों में अब भी वह खिलौने भरे होंगे, जो मैंने उसके खेलने के लिए इकट्ठे किये थे। धीरे धीरे पुत्र बड़ा हुआ। भिक्षा मांग मांग कर उसे पढ़ाया। जब वह तरुण हुआ तो मकान गिरवीं रखकर—कई हज़ार रुपए से—उसका व्याह किया। इसी बीच में भगवान् ने धन भी खूब दिया, कुछ कंगाली दूर हुई। उस समय मैं समझता था—पुत्र बुढ़ापे का सहारा होगा। मृत्यु के समय उसके हाथों से मेरा दाह—संस्कार होगा। परन्तु हाय! वही पुत्र, वही कलेजे का टुकड़ा, स्त्री के आते ही उसका बन गया और हम दोनों को मार मार कर घर से निकाल दिया। परमात्मा यह तेरा कैसा न्याय है?

पुत्रों में ऐसी दुष्ट बुद्धि, जब उपजायी ईश्वर तूने।
तो फिर मां बापकी छाती में क्यों ममता दी ईश्वर तूने॥

लक्ष्मी०—नाथ, चिन्ता मत करो। जिसको अपने हाथों से पाला है, उसी की शिकायत रहने दो। ईश्वर का इस में कुछ दोष नहीं है। अपने अपने भाग्य की बात है। जो कटारी रक्षा करती है वही असावधानी से अपने ही प्राणों की शत्रु बनती है। इसलिए शान्त हूजिए। इस वृक्ष के नीचे कुछ देर विश्राम कीजिए।

(लक्ष्मी की गोद में शिर रखकर भानुशंकर का सोना और दूसरी ओर से चम्पकलाल का आना)

चम्पक०—(स्वगत) हे भगवन्, मैं बड़ा अभागी हूँ, अपराधी हूँ। अनेकानेक बस्तियों में और बनों में अपने माता पिता को ढूंढा परन्तु उनका दर्शन नहीं हुआ।

आज अन्तिम खोज है। यदि आज भी वे नहीं मिले तो इसी वन में चिता बनाकर भस्म हो जाऊंगा, या किसी वृक्ष से लटक कर गले में फांसी लगाकर मर जाऊंगा। (आगे बढ़कर आश्चर्य से) हैं ! ऐसे निर्जन स्थान में यह दो मनुष्य कौन हैं? (पहचान कर) क्या माता पिता? प्रणाम। (चरणों में गिरता है।)

भानु०—(उठकर) हैं ! कौन? कौन पिता कहकर मुझे पुकारता है? मैं किसी का पिता नहीं हूँ। मेरे कोई पुत्र हुआ ही नहीं !

चम्पक०—पिता जी, मैं ही आपका अपराधी पुत्र चम्पकलाल हूं। आपकी शरण आया हूँ, अपने अपराधों की क्षमा चाहता हूँ।

भानु०—नहीं भाई, तू मेरा बालक नहीं है। मैं कभी किसी बालक का बाप नहीं हुआ।

लक्ष्मी०—मेरा तो चम्पक शिर पर बाँकी टोपी रखता था। हाथ में चांदी की मूठवाली छड़ी लेकर चलता था। तू तो कोई कोढ़ी है !

चम्पक०—हाँ, मैं कोढ़ी हूँ। सती विद्या के शाप से मेरी यह हालत हुई है ! माता, माता, क्या तुम भी मुझे भूल गयीं।

(माता के चरणों पर गिरता है)

लक्ष्मी०—हैं ! मेरी कोख क्यों फड़की ? मेरी छातियों में दूध क्यों भर आया ! यही है मेरा चम्पक, यही है। आ मेरे बच्चे, मैं तुझे छाती से लगालूं।

(चम्पक से लिपट जाती है)

भानु०—अरी, यह क्या करती है ? अभी इसका मिज़ाज गर्म हो जायगा तो हड्डी पसली सब तोड़ के रख देगा।

चम्पक०—पिताजी, अब ऐसे शब्द न कहो। श्रवणकुमार की जीवनी ने मुझपर बड़ा प्रभाव डाला है। मैंने अब मनसे उन्हें अपना गुरू माना है। मैं अब आपका सच्चा भक्त हूँ, सच्चा सेवक हूँ:—

तुम्हारी सेवकाई ही मुझे अमृत की धारा है।
तुम्हारा यह चरण मेरे लिए वैकुण्ठ-द्वारा है॥
तुम्हारी ही कृपा से सोते सोते जग गया हूँ मैं।
न अब ठुकराइये स्वामी चरणसे लग गया हूं मैं॥

भानु०—आज तेरा मिज़ाज ठीक है तो तू ऐसी बातें करता है, कल ही चमेली जब तुझे मन्त्र देगी तो तू हमें मार मार कर घर से निकालेगा।

चम्पक०—हाय, कैसा आघात है ! पिताजी, चमेली ने मुझे बड़ा धोखा दिया। वह जारिनी किसी पाखण्डी साधु के साथ भाग गई। मैंने अपनी गलती की खूब सजा पाली। अब मुझे इन चरणों से अलग न करोः—

मुझ मूर्ख ने संसार में जैसा किया वैसा भरा !
अब आंख खुलते ही, तुम्हारे रूप का परिचय मिला ॥
रग रग से मेरी—आज होती है यही प्यारी सदा ।
माता-पिता, माता-पिता, माता-पिता, माता-पिता ॥

(फिर चरणों में गिरना)

लक्ष्मी०—(भानुशंकर से) तुम्हारा कैसा वज्र हृदय है ? पुत्र की ऐसी दशा देख कर भी तुम्हारे रुएँ खड़े नहीं होते ? बेटे की आवाज़ से भी तुम्हारा हृदय नहीं उमगड़ता ? आ, मेरे लाल, उठ मेरे बच्चे। मैं तुझे अपने कलेजे से लगाऊँगी। तू जो कहेगा वही करूंगीः—

बुरा है या भला है जैसा है मेरा दुलारा है।
मेरी आँखों का तारा है, मेरे प्राणों का प्यारा है॥

(फिर हृदय से लगाना)

भानु०—अब मुझ पर भी नहीं रहा जाता। आ, मेरे बेटे, मैं भी तुझे छाती से लगाऊँगा।

(छाती से लगाना)

संभला है जिस तरह से मेरा लाल बिगड़ कर ।
आबाद हुआ जिस तरह घर मेरा उजड़ कर ॥
संसार भी बस उस तरह कर्त्तव्यवान् हो ।
हो कर्मवान्, धर्मवान् सत्यवान् हो ॥

❀ गाना ❀

है नर वह ही जो हरि से प्रीति लगावे ।
है धन वह ही जो काम धर्म्म के आवे ॥
है गुणी वही जो निज महिमा न बखाने ।
है ज्ञानी वह जो आत्मतत्त्व पहचाने ॥
है सती वही पति को नारायण माने ।
और पुत्र वही जो पिता को ईश्वर जाने ॥
है उत्तम वह जो किसी का जी न दुखावे ।
है धन वह ही० ॥ १ ॥
है शिष्य वही जो गुरू की सेवा करते ।
है सेवक वे जो निज स्वामी से डरते ॥
है मित्र वही जो नहीं दुःख में टरते ।
है सन्त वही जो सबका संकट हरते ॥
है वही गवैया जो प्रभु के गुण गावे
है धन वह ही० ॥ २ ॥

(सब का जाना)

पांचवां दृश्य

सरयू नदी का किनारा ।

(धनुषबाण लिए हुए, सत्यकीर्ति के साथ महाराज दशरथ का प्रवेश)

दशरथ—सत्यकीर्ति, बनैले जीव मेरी प्रजा को बड़ा कष्ट पहुँचाते हैं । प्रजा की रक्षा करना मेरा परम धर्म्म है । तुम उधर से उन नर-हिंसक जन्तुओं को मार भगाओ, मैं इधर इस दुष्ट जानवर के पीछे जाता हूँ ।

सत्य०—जो आज्ञा ।

(दोनों का दोनों ओर जाना, श्रवण का माता पिता के साथ आना)

❀ गाना ❀

जन्म वह किस अर्थका है देह वह किस काम की ।
रट लगाई है नहीं, जिसने प्रभू के नाम की ॥
जिसको ईश्वर ने दिया है, प्रेम भक्ती का प्रसाद ।
उसको कुछ इच्छा नहीं, इन्द्रादि के धन धाम की ॥
प्रेम से और भक्ति से लेते नहीं जो उसका नाम ।
उनको रखना चाहिये मुख में न रसना चाम की ॥
प्रेम मेरा—है पिता, और भक्ति मेरी—मात है ।
यह युगल जोड़ी है मेरे हृदय के विश्राम की ॥

—०—

श्रवण०—

माता जी, पिता जी, अब हम अयोध्या नगरी में आगए हैं। इस समय सरयू के समीप खड़े हैं।

शान्त्व०—अहा, फिर हम जन्म-भूमि में आए हैं ! बेटा, यहां कुछ देर बैठ कर शान्ति प्राप्त कर। तूने हमारे कारण बड़े कष्ट उठाये हैं, और भली प्रकार हमें सम्पूर्ण तीर्थ कराए हैं।

श्रवण०—नाथ, यह सब आप ही का प्रताप है। आप ही की कृपा का सब फल है।

ज्ञान०—निस्सन्देह, पुत्र हो तो श्रवण सा। आ—बेटा मैं तेरे सिर पर हाथ फिराऊं ! तुझ पर बल बल जाऊं।

शान्त्वन-बेटा, थोड़ी तृषा है, कुछ जल पीने इच्छा है।

श्रवण०—(लोटा उठा कर) तो मैं अभी जल लाता हूँ:—

अब तो हम आगए हैं, सरयू—गंगा—तीर।
लाता हूँ मैं शीघ्र ही, पावन सुन्दर नीर ॥

ज्ञान०—

हाँ, हाँ, जल्दी जाना—बेटा, झारी में जल लाना बेटा।
वापिस जल्दी आना—बेटा, शीतल नीर पिलाना बेटा ॥

श्रवण०—

जाता हूँ, जाता हूँ माता, झारी भर लाता हूँ माता।
अभी अभी आता हूँ माता, शीतल जल ल्याता हूँ माता ॥

(स्वगत) माता-पिता को छोड़ कर, लेने जाता नीर ।

रक्षा करना, जगतपति, चित्त है आज अधीर ॥

(माता पिता को एक वृक्ष के नीचे बैठा कर, जल भरने के लिए, सरयू के किनारे श्रवण जाता है। जिस समय सरयू में लोटा डालता है, उसी समय लोटे की आवाज़ को सुनकर, महाराज दशरथ अपने शिकार के धोखे में शब्द-भेदी वाण अन्तरिक्ष में छोड़ते हैं। वह वाण श्रवण के लगता है और श्रवण ज़ख्मी होकर गिर पड़ता है।)

श्रवण०—हाय, माता पिता ! मेरे वाण लगा ! मैं चला ! मेरा प्राण निकला ! माता ! माता ! पिता ! पिता !

(दशरथ का प्रवेश)

दशरथ—अरे ! यह क्या हुआ ? कौन बोला ? किस के वाण लगा ? (श्रवण को देख कर) कौन ? श्रवण कुमार ? अरेरेरे यह मैंने क्या किया ? शिकार के धोखे में श्रवण के वाण मारा ? दशरथ, तूने आज बड़ा अनर्थ कर डाला ! धोखा ! धोखा !

श्रवण०—(दर्दभरी आवाज़ से) माता ! माता ! पिता ! पिता ! तुम्हें जल-पान कैसे कराऊँ ? तुम्हारी प्यास किस प्रकार बुझाऊं ? मुझे अपने मरने का तो शोच नहीं है, शोच यह है कि अब तुम्हारी ख़बर कौन लेगा? तुम्हारी सेवा कौन करेगा?

दशरथ—(आगे बढ़ कर) श्रवणकुमार ! मेरे श्रवण कुमार ! आंखें खोलो ! इधर देखो ! तुम पर वाण चलानेवाला मैं हूँ !

अपने हाथों से अपने पांव में कुल्हाड़ी मारनेवाला मैं हूं। वधिक, हत्यारा, खूनी, अपराधी, आदि उपाधियों से अपने को कलंकित करनेवाला मैं हूँ—

मुझ पै मेरे इस कर्म पै फिटकार सौ सौ बार है।
इस हाथ पै इस बाण पै धिक्कार सौ सौ बार है॥

दशरथ—हाय ! पृथ्वी क्यों नहीं फटती ! सरयू प्रलय का स्वरूप क्यों नहीं धारण करती ! "प्रणाम" का शब्द सुन कर कान फट क्यों नहीं जाते ! आँखें फूट क्यूं नहीं जातीं ! श्रवण, पितृभक्त श्रवण, मेरे हृदय, मेरे प्राण श्रवण, मैं बड़ा पातकी हूँ। तुम मुझे अपनी 'आह' से तिल तिल करदो। मैं बड़ा अपराधी हूँ। शिकार के धोखे से तुम्हारे प्राण लेनेवाला मैं ही हत्यारा और कलंकी हूँ :—

शस्त्रों के हों आघात तो बदला चुके इस का।
हों मुझ पै वज्र—पात तो बदला चुके इस का॥
जो शर श्रवणकुमार के प्राणों को चर गया।
पहले ही उससे क्यों न यह अवधेश मर गया॥

श्रवण०—(करुण-स्वर से) महाराज, शिकार के धोखे में आपने मेरे बाण मारा तो आप दोषी नहीं है। संसार में जो जन्मा है वह अवश्य ही मरता है। परन्तु मुझे इस मृत्यु में भी बड़ा आनन्द होता है। मैं बड़ा भाग्यशाली हूँ। जब तक जिया माता

पिता की सेवा ही में जिया, और अब मरा भी तो माता पिता ही की सेवा में मरा—

हे जगतपति, चाहता इतनी दया अब आपकी ।
मैं जहाँ जाऊँ, वहां सेवा करूँ मां बाप की ॥

दशरथ—और मैं ? मैं क्या करूँ ? तुम मेरे सामने मरो और मैं देखता रहूँ ? क्षत्रिय-पुत्र होकर, अयोध्या-पति होकर, एक पितृ-भक्त की हत्या करने के पश्चात् सँसार में जीवित रहूँ ? मारो मारो दुनिया की बलाओ, इस हत्यारे दशरथ को मार डालो । सूर्य, तुम इस सूर्य्यवँश के हत्यारे राजा को अपनी किरणों से भस्म कर डालो । श्रवण, श्रवण, पितृभक्त श्रवण, बताओ, बताओ, मैं मैं अब क्या करूँ ? मुझे बताओः—

उचित हो जिस तरह, वैसे ही मुझ से तुम भी बदला लो ।
मरण के पहले, शान्त्वन-पुत्र मुझ से कोई सेवा लो ॥

श्रवण०—अच्छा, आप बहुत दुखी हैं तो इतना काम कीजियेगा । यहाँ से समीप ही एक वृक्ष के किनारे मेरे बुड्ढे और अन्धे माता-पिता प्यासे बैठे हुए हैं, उन्हें इस लोटे में जल लेजाकर पिला दीजिए । बस, अब नहीं बोला जाता, मैं चला, मेरा प्रणाम लीजियेः—

माता है मेरी श्री, पिता मेरा है—शब्द-ओ३म् !
माता पिता में लीन है, सेवक का रोम रोम ॥

अब प्राण तो है कण्ठ में होठों पै नाम है ।
माता पिता को मानसिक अन्तिम प्रणाम है ॥

माता ! माता ! पिता ! पिता !

(मृत्यु)

दशरथ—हाय ! अन्धकार ! घोर अन्धकार ! शान्त्वन—पुत्र निस्सत्व होगया ! तारा—मण्डल निस्तेज हो गया ! सरयू का जल स्तब्ध होगया ! वायु बन्द है । सँसार काला है:—

मैं अन्धा हूँ, दुर्बुद्धी हूँ, नर-हिंसक हूँ हत्यारा हूँ ।
मैं सज्जन—वध का दोषी हूँ, अपराधी हूँ नाकारा हूँ ॥
शान्तवन—कुमार की हत्या का बदला मुझसे लेलो कोई ।
यह माँस मेरा नोचो कोई यह खाल मेरी खींचो कोई ॥
हाय श्रवण ! श्रवण ! श्रवण !

(श्रवण की लाश पर गिरना)

शान्त्वन—(वृक्ष के नीचे, बैठने की जगह से कुछ विचलित होकर) अचानक मेरे हृदय में मुक्का सा लगा ! श्रवणकुमार अभी तक जल लेकर क्यों नहीं आया ?

ज्ञान०—हैं ! मेरी कोख दांई ओर से क्यों फड़क रही है ? मेरी छाती क्यों बैठ रही है ? अरेरेरे मेरा कलेजा क्यों निकला आरहा है ? मुझे पसीना क्यों आरहा है ? श्रवणकुमार, बेटा श्रवणकुमार ! (पुकारती है)

दशरथ—(अचानक श्रवण की लाश पर से उठ कर) किसने पुकारा ? कौन बोला ? क्या कहा ?—श्रवणकुमार ? पुकार, पुकार, वायु तू भी पुकार श्रवण कुमार ! आकाश तू भी पुकार—श्रवणकुमार ! और इन सब के साथ साथ, रघुकुल के कलँकी दशरथ तू भी पुकार श्रवणकुमार !

(सत्यकीर्ति का प्रवेश)

सत्य०—हैं ! राजाधिराज को क्या होगया ? (दशरथ से) राजेन्द्र, यह लाश किसकी है ? आप किसका नाम ले लेकर विलाप कर रहे हैं ?

दश०—सत्यकीर्ति, तुम शीघ्र गुरु वशिष्ठ को बुला लाओ, और मेरे हाथ से—श्रवण की मृत्यु हुई है—यह समाचार उन्हें पहुँचाओ ।

सत्य०—हैं ! यह क्या हुआ ! माता पिता का अद्वितीय पुत्र श्रवणकुमार मृतक हुआ ! हा जगदीश ! हा विधाता !

(जाना)

दशरथ—हाय, सोचा था—माता पिता को तीर्थ-यात्रा कराकर जब श्रवणकुमार अयोध्या आयेंगे तब हम ब्राह्मणों और ऋषियों के साथ उन्हें लेने के लिये जायेंगे। हाथी पर चढ़ा कर ऐसे सुपुत्र को नगर में लायेंगे। तीर्थ-यात्रा पूरी होने की खुशी में खूब यज्ञ, दान, भण्डारे करायेंगे। सब गया—सब समाप्त होगया। दशरथ, उसी कुलभूषण श्रवणकुमार को मार के तू सँसार को

अपना मुख दिखाना चाहता है ? ऐसा घोर अपराध करके जीना चाहता है ?

वृक्ष की ओर से आवाज़-(ज्ञानवती द्वारा) श्रवणकुमार ! श्रवणकुमार !

दशरथ-फिर वही मार्मिक ध्वनि । कोई कह रहा है श्रवण-कुमार ! श्रवणकुमार !! शायद यह वही बूढ़े और अन्धे, श्रवण के माता पिता, श्रवण को बुला रहे हैं ! प्यासे चिल्ला रहे हैं ! अब क्या करूँ ? अच्छा, पहले मरनेवाले की वसीयत पूरी करूँ लोटे में जल भर कर ले आऊँ और प्यासों की प्यास बुझाऊँ ।

(लोटा भर कर जाते जाते)

चलता है सच्चा तीर सदा, पर झूठे दाँव नहीं मिलते ।
दशरथ तो चलता है लेकिन दशरथ के पांव नहीं चलते ॥

(पास पहुंच कर-शान्त्वन और ज्ञानवती से) माता पिता, जल पीजिए ।

शान्त्वन-जल ले आया ? परन्तु समय बहुत लगाया ? और तेरी आवाज़ भी भारी होरही है । बेटा, क्यों ? बोलता नहीं ?

दशरथ-(स्वगत) हा ! अब क्या कहूँ ? किस स्वर में बोलूँ ? किन वाक्यों में उत्तर दूं ? चाहे कितना ही संकट हो परन्तु दशरथ झूठ नहीं बोल सकता [प्रकट) मैं श्रवण नहीं हूँ अयोध्या का राजा दशरथ हूं । जल पीजिये ।

ज्ञान०—मैं तो पहले ही समझ गई थी, यह मेरे पुत्र की आवाज़ नहीं है। दशरथ जी आप जल लेकर कैसे आये हो? हमारा श्रवण कहाँ है?

दशरथ—(स्वगत) हाय! अब कैसे कहूँ? किन शब्दों कहूँ? किस वाणी से कहूँ? कहूँ? या न कहूँ?

शान्त्वन—अवधेश, उत्तर नहीं देते? तुम्हारा प्यारा श्रवण कहाँ है? हमारा लाड़ला श्रवण कहाँ है:—

करवाए ले काँवरी जिसने तीर्थ अनेक।
वृद्धावस्था की वही, कहाँ हमारी टेक?

दशरथ—(स्वगत) निश्चित होगया, रघुवंशी मिथ्या भाषण नहीं करेगा। सब सच्चा वृत्तान्त खोल कर कह देगा। (प्रकट) शान्त्वन जी और ज्ञानवती जी आपके श्रवण के मृत्यु होगयी।

शान्त्वन और ज्ञान०—हैं! मृत्यु होगई!!!

दशरथ—हाँ, मृत्यु होगई, और मेरे ही कारण होगई! वह सरयू में जल भर रहा था, कि मैंने शिकार के धोखे में बाण मारा और इस प्रकार वह नर-रत्न सुरपुर सिधारा!

ज्ञान०—हाय, मेरा दुलारा........

(मूर्च्छित)

शान्त्वन—मेरा प्यारा......

(मूर्च्छित)

दशरथ—(स्वगत) ओह! कहते तो कह गया, परन्तु अब

शिर घूम गया ! हृदय फट गया ! (शान्त्वन और ज्ञानवती से) उठो, महामान्य और महाभागे, उठो । आज से अपना श्रवण मुझे समझो । यह जल पियो ।

शान्त्वन—(उठकर) जल ? जल ? अब जल नहीं पियेंगे । तेरे हाथों का जल नहीं पियेंगे। तेरी अयोध्या का जल नहीं पियेंगे। तेरी सरयू का जल नहीं पियेंगे । पुत्र-वियोग में निर्जल ही प्राण देंगे ! अयोध्यापति दशरथ, जिस बाण से तूने श्रवण को मारा उस से हमें मार देता तो अच्छा था ! हाय श्रवण, बेटा श्रवण:—

जिसको न तूने भूमि पै सोते हुए देखा ।
जिसको न तूने आंख से रोते हुए देखा ॥
वह ही तेरे वियोग में चिंघाड़ रहा है ।
बेटा, यह बूढ़ा बाप हृदय फाड़ रहा है ॥

दशरथ, मेरा शाप है कि जिस प्रकार वृद्धावस्था में पुत्र-वियोग से मेरी मृत्यु होती है, उसी प्रकार बुढ़ापे में, पुत्र के विरह से, तेरी भी मृत्यु होगी ! यह शाप अटल है ! हा, श्रवण, बेटा श्रवण, जहां तू है, वहीं मैं भी आता हूँ—

जल के मच्छ, कहीं-जल के बिन जग में रहने पाते हैं ।
जहां गया है प्राण—पियारा वहीं प्राण भी जाते हैं ॥
ओ३म् । शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

(मृत्यु)

दशरथ—(स्वगत) हा ! दूसरी हत्या और हुई ! क्या कहा

शान्तवन ने अभी क्या कहा ? शाप अटल है। हाँ, निस्सन्देह शाप अटल है। चाहे मैंने यह अपराध जान से किया या अजान से, परन्तु बूढ़े ने टूटी हुई छाती से, पिघले हुए हृदय से, जो वाक्य कह दिया वह अटल है। मैं भी स्वीकार करता हूँ। कहे देता हूँ कि, हे जगदीश्वर यह शाप अटल न होनेवाला हो तौ भी अटल हो। श्रवण की मृत्यु का बदला यही होसकता है ! मेरी शान्ति का उपाय यही हो सकता है। (ज्ञानवती से) माता, माता !

ज्ञान०—हाय मैं जीते जी मर गई ! मेरी गोद उजड़ गई ! मेरे सौभाग्य का सूर्य्य अस्त होगया ! पुत्र भी गया पति भी गया:—

कलेजा अब कहाँ है जो कलेजा फाड़ डालूं मैं।
कहाँ वह आँख है जिस आँख से आँसू निकालूँ मैं॥
बदन है, देह है, तन है, मगर शक्ती कहाँ मेरी।
है मट्टी तो यहाँ मेरी और आत्मा है वहाँ मेरी॥

दशरथ ! मेरा भी शाप ले। जिस प्रकार मेरे पुत्र और पति की लाशें बिना क्रिया-कर्म के यहाँ पड़ी हुई हैं उसी प्रकार तेरा भी मृतक शरीर अयोध्या में पड़ा रहे। ठीक समय पर दाह-सँस्कार न हो। हा ! मेरा प्राण गया, मेरा आत्मा गया, मेरा प्यार, मेरा शृँगार, मेरा धन, मेरा तन, सब गया—

पतिदेव, जहां तुम जाते हो, दासी भी वहीं जारही है ।
ठहरो बेटे, तुम जहां पै हो, माता भी वहीं आरही है ॥
हाय श्रवण, हाय स्वामी, स्वामी, शान्ति !

(मृत्यु)

दशरथ–हैं ! सती भी मरगई ? तीसरी हत्या और हुई ! सती, तुम्हारा शाप भी तुम्हारे पति शान्तवन के शाप की तरह मुझे स्वीकार है । यह शाप, शाप नहीं हैं, मेरी आत्मा की शान्ति के अनुष्ठान हैं । दूसरी दृष्टि से अगर विचार करूँ तो वरदान हैं । मेरे पुत्र नहीं होता, इस शाप के फल से पुत्र तो होगा । आगे फिर जो होगा वह होगा । परन्तु वह आकाश में तारे क्यों हंस रहे हैं ? वायु में से सुगन्धि क्यों आरही है ? क्या इस घटना से देवता प्रसन्न हैं ? या मुझे इस समय वहम है ? हैं ! हैं !! वह श्रवण और श्रवण के माता पिता की मूर्तिमान् हत्यायें मेरे आगे खड़ी हैं !!! नहीं नहीं, यह तो सरयू में से लहरें उठी हैं ! (यमराज को देखकर) वह काला काला सामने कौन है ? कोई नहीं ! कोई नहीं !! मेरा सर घूमता है ।

(मूर्च्छित)

वशिष्ठ–(प्रवेश कर के) राजेन्द्र, कैसे मूर्छित पड़े हो ? उठो, उठो, जो होना था सो हो गया, अब शान्ति धारण करो ।

दशरथ–(उठकर) गुरुदेव, मुझे आज बड़ा पश्चात्ताप है ।

ऐसा विदित होता है मानो मेरे माथे पर आज घोर ताप है। (यमराज को देखकर) हैं, फिर वही काली काली डरावनी मूर्त्ति ! तू कौन है ? बोल, सामने खड़े हुए व्यक्ति, नहीं तो अभी तुझे अपने बाण का शिकार करता हूँ।

यमराज—अवधेश, मैं यमराज हूँ। यहां कुछ जीवों के प्राण लेने आया था। पीछे मालूम हुआ कि वे जीव (अर्थात् श्रवण और श्रवण के माता पिता) मेरे अधिकार से बाहर हैं, क्योंकि वे स्वर्ग में जानेवाले यात्री हैं ! इसीलिए मैं अब यमराज से धर्मराज बना जाता हूँ।

(ड्रेस ट्रांसफ़र, भयानक यमराज का सुन्दर धर्मराज बनजाना)

दशरथ—हैं ! यह कैसा परिवर्तन ! उस भयावनी, काली मूर्ति के स्थान में यह सुन्दर और उज्ज्वल देव-दर्शन !

धर्म्मराज—नरेन्द्र , मैं हूँ तो एक ही व्यक्ति, परन्तु रूप मेरे दो हैं। नारकीयों के लिए यमराज और स्वर्गीयों के लिए धर्म्मराज।

दशरथ—धन्य ! अच्छा धर्म्मराज जी, मेरी एक प्रार्थना स्वीकार कीजिए। श्रवण और उसके माता पिता की आत्माओं को आप छोड़ दीजिए। अन्यथा शोक में बावला यह दशरथ, कोदण्ड को टंकोरेगा और इन्द्र, चन्द्र, वरुण, कुबेर आदिकों को परास्त करके स्वर्ग पर विजय प्राप्त करेगा ॥

(ड्रॉप पतन)

धर्म०—शान्त, रघुकुलपति शान्त । मरे हुओं को जिलाना मेरी सामर्थ्य के बाहर है । आप शंकर की प्रार्थना करें वे मृत्युञ्जय हैं, उनमें बड़ी शक्ति है । वे चाहें तो यह अनहोनी भी होसकती है ।

(धर्मराज का अन्तर्ध्यान होना)

वशिष्ठ—सत्य है ! मृत्यु के देवता शङ्कर ही हैं । अवधेश ठहरो, मैं भगवान् कैलासपति ही को बुलाता हूँ ।

आवाहन

नागेन्द्र-हाराय, त्रिलोचनाय, भस्माङ्गरागाय महेश्वराय ।
नित्याय शुद्धाय निरञ्जनाय तस्मै नकाराय नमः शिवाय ॥
मन्दारमालाँकित शेखराय, त्रैलोक्यनाथाय जनार्चिताय ।
दिव्याय वस्त्राय, दिगम्बराय, तस्मै मकाराय नमःशिवाय ॥

(शंकर का प्रकट होना)

शंकर—कल्याणमस्तु । वशिष्ठ जी क्या आज्ञा है ?

वशिष्ठ—दशरथ को श्रवण और उसके माता पिता की मृत्यु का घोर दुःख है । कृपा करके इनके इस दुःख को खो दीजिये ।

अनजान में लगे हुए-इस सूर्य्यवंश के कलंक को धो दीजिए। मृतकों को प्राण दीजिए, इस समय यही वरदान दीजिए।

शङ्कर-ब्रह्मर्षि, श्रवण और उसके माता पिता की आत्मायें तो स्वर्गलोक में भगवान् विष्णु के समीप पहुंच चुकी हैं। अब वे महान् तेजोमयी और पूजनीया बन गई हैं। इस कारण मर्त्यलोक में तो इन मृतकों को अब नहीं जिलाया जासकता है। हाँ, आप कहें तो स्वर्गलोक में इनके मृतक शरीरों को पहुँचाया जाय और वहीं इन्हें जीवन देकर सदैव के लिए सदेह स्वर्गवासी बनाया जाय।

वशिष्ठ-यही कीजिए। किसी प्रकार दशरथ के हृदय को शान्ति तो दीजिए।

शङ्कर तथास्तु। नेत्रों को मूंदो, मैं अभी आपको और दशरथ महाराज को स्वर्ग की सैर कराता हूँ। साथ ही श्रवण और श्रवण के माता पिता के मृत-शरीरों को भी अपनी शक्ति से वहीं पहुंचाता हूँ ?

(वशिष्ठ तथा दशरथ का नेत्र मूंदना, शंकर का ताली बजाना। अचानक दृश्य बदल जाना)

—०—

विशेष दृश्य

स्वर्ग-लोक ।

दशरथ—धन्य २, यहाँ का आनन्द तो अद्भुत और अपूर्व है ।

वशिष्ठ—त्रिपुरारि की कृपा से कुछ समय के लिए हमें भी यह दृश्य देखने को मिला ।

शङ्कर—अब मैं भगवान् विष्णु को बुलाता हूँ, और उन्हीं के द्वारा इस अभिनय की पूर्ति कराता हूँ:—

श्लोक—

सशङ्ख चक्रं, सकिरीट कुण्डलं—
सपीत वस्त्रं, सरसीरुहेक्षणम् ।
सहारवक्षःस्थल कौस्तुभश्रियम्—
नमामि विष्णुं शिरसा चतुर्भुजम् ॥

(विष्णु भगवान् का प्रकट होना)

विष्णु—महेश्वर ! मैं उपस्थित हूँ । क्या आज्ञा है ?

शङ्कर—श्रवण और श्रवण के माता पिता के मृत शरीरों को जीवन दान देते हुए सदैव के लिए सदेह अविचल-धाम दीजिए और अयोध्यापति दशरथ के हृदय को विश्राम दीजिए ।

विष्णु—एवमस्तु । सदाशिव, मैं श्रवण की पितृभक्ति देखकर अत्यन्त प्रसन्न हूँ । जिस प्रकार तुम्हारे पुत्र गणपति ने तुम्हारी सेवा करके गणपति का पद पाया उसी प्रकार श्रवणकुमार ने अपने अन्धे और बूढ़े माता पिता की भक्ति करके त्रिलोकी में अपनी कीर्ति का डंका बजाया । संसार के सुपुत्रों में आज से यह सर्वोत्तम कहलाया । इसकी पितृ-भक्ति को देखकर मुझे भी पितृ-सेवा करने की इच्छा हुई है । इसीलिए शान्त्वन के शापानुसार मैं सूर्यवंश में दशरथ के यहां रामावतार लेकर पितृ-भक्ति करूँगा ।

(श्रवण और उसके माता पिता के मृत शरीरों को स्पर्श करके)

तुम्हें देखने के लिए व्याकुल सब के नैन ।
उठकर भेंटो, भाव से, मिले चित्त को चैन ॥

(श्रवण और उसके माता पिता का जी उठना)

श्रवण०—माता ! पिता !! (विष्णु भगवान् को देखकर) हैं ! कौन ? चतुर्भुजी मूर्तिवाले, त्रिलोकीनाथ भगवान् विष्णु ? (विष्णु से) नारायण, आप तो निर्गुण ब्रह्म हैं, इस कारण पहले मैं सगुण-ब्रह्म-स्वरूप अपने माता पिता को प्रणाम करता हूँ:-

(माता पिता को साष्टांग दण्डवत् करना)

शान्त्वन्—(श्रवण को अपने हाथों पे उठा कर) हम कहां हैं-श्रवण ?

शङ्कर—स्वर्ग में। देवताओं के पास। तुम्हारी तीर्थयात्रा सफल हुई, नेत्रों में दिव्य ज्योति आई।

ज्ञान०—धन्य, पुत्र हो तो ऐसा हो, जिसने मर्त्यलोक में सम्पूर्ण तीर्थों को दिखाया और स्वर्गलोक में साक्षात् विष्णु भगवान् का दर्शन कराया।

दशरथ—(शंकर से) महादेव, इस दृश्य को देखकर निःसन्देह मेरे हृदय को इस समय शांति होगई। परन्तु यह क्या कारण है कि मैं आपकी कृपा से यहाँ की बातें समझ तो लेता हूँ लेकिन उसी क्षण भूल भी जाता हूँ।

शङ्कर—इसलिए कि तुम्हारे हृदय की शांति के साथ साथ तुम्हारी स्वर्ग की सैर भी होगई। अब फिर हम मर्त्यलोक में जाने की तुम्हें और ब्रह्मर्षि वशिष्ठ को आज्ञा देते हैं। यहाँ की बातें मर्त्यलोक में पहुँचते ही तुम भूल जाओगे।

शान्त्वन—(विष्णु भगवान् से) भगवन्, जब हम सब स्वर्ग में आ पहुँचे तो हमारी पुत्रवधू विद्यादेवी कहाँ है?

विष्णु—उसके लिए जो ऊँचा स्थान निश्चित हुआ है वहां है।

(विष्णु भगवान् के संकेत पर विमान पर बैठी हुई विद्या का दिव्य दर्शन)

ऋषि शान्त्वन, सुनिए, आप के पुत्र का मेरे आशीर्वाद से ध्रुव, अगस्त, शुक्र बृहस्पति के समान आदर होगा। जिस स्थान

पर उसका निवास होगा वह स्थान "श्रवण नक्षत्र" के नाम से विख्यात होगा ।

(विष्णु भगवान् के संकेत पर यथास्थान विमानों पर श्रवणदेव और उसके माता पिता का दिव्य रूप में दर्शन)

वशिष्ठ—सुतों में सेवा करने की जो शक्ती हो तो ऐसी हो ।
अरे-देखो, पिता माता की भक्ती हो तो ऐसी हो ॥

सब—जय, जय, माता पिता के भक्त श्रवणकुमार की जय. ॥

(पुष्प-वृष्टि के साथ साथ यवनिका पात)

समाप्त.

